'' उस दिन को जब हम वहशी नहीं रहेंगे

[illegible]



प्रथम संस्करण, जनवरी १९४९

प्रकाशक
हिन्दुस्तानी पब्लिशिंग हाउस, इलाहाबाद

मुद्रक
सरस्वती प्रेस, बनारस

आवरण चित्र
माखनदत्त गुप्त

वर्णलिपि
कृष्णचन्द्र श्रीवास्तव

☆

मूल्य २।)

इस वृद्धी है

लेखक के बारे में

कृशनचन्दर का परिचय देने की कोशिश भी एक तरह की गुस्ताखी ही होगी क्योंकि कृशन को अब हिन्दी के लोग भी काफी अच्छी तरह जान गये हैं। गो वह उर्दू के लेखक हैं, लेकिन पिछले कई बरसों से उनकी इतनी और ऐसी चीज़ें हिन्दी पत्रों, विशेषकर 'हंस' और 'कहानी', में निकली हैं कि हिन्दीवाले अब उनको अपना ही लेखक समझने लगे हैं। 'हंस' के सम्पादन के सिलसिले में मेरे पास ऐसे कई पत्र समय समय पर आये हैं जिनके जोर पर मैं यह बात कह रहा हूँ। कुछ लोगों को इस बात से हल्की सी चोट भी लगी जब मैंने उन्हें लिखा कि कृशनचन्दर मूलतः उर्दू के लेखक हैं, (यह बात बिलकुल अलग है कि जैसा कि उन्होंने मुझको बतलाया, आजकल वह जोरों से हिन्दी सीख रहे हैं और जल्दी ही सीधे हिन्दी में लिखने लगेंगे!) और उनकी कहानियाँ अनुवाद होकर हिन्दी में छपती हैं! ऐसी सूरत में जब कि वह जल्दी ही खुद हिन्दी के मैदान में आनेवाले हैं, हिन्दी के लोगों ने पहले ही से उन्हें अपना मान-कर अपनी गुणग्राहकता का ही सबूत दिया है!

मेरा खयाल है कि कृशनचन्दर सबसे पहले अपनी 'आँगी' कहानी के साथ हिन्दी पाठकों के सामने आये। यह कहानी आज से लगभग दस साल पहले उर्दू गल्प संसार माला में छपी थी। उसके बाद तो इनकी कई कहानियाँ आयीं जिन्होंने बरबस पढ़नेवालों का ध्यान अपनी ओर खींचा, इसीलिए दस-बारह-पन्द्रह कहानियों के बाद ही अब उनके पढ़ने

वाले तैयार हो गये हैं जो ढूँढ़ ढूँढ़कर उनकी चीजें पढ़ते हैं। 'आँगी' के बाद जो कि एक रोमानी कहानी है, उनकी जो मार्के की कहानी हिन्दी पढ़नेवालों के सामने आयी वह 'दो फ़र्लांग लंबी सड़क' थी, जो निम्न मध्यवर्ग के एक आदमी की जिन्दगी का एक तीखा यथार्थवादी चित्र है। उसके बाद 'पूरब देस है दिल्ली' और 'गुर्दे का दर्द' वगैरः कहानियाँ छपीं। इन सभी कहानियों ने उनके लेखक की ओर लोगों का ध्यान खींचा।

मगर जब 'अन्नदाता' कहानी छपी तो एक छोटा-मोटा भूचाल-सा आ गया। इसमें शक नहीं कि बंगाल के अकाल के बारे में लोगों की अन्तरात्मा को जगाने में जितना योग इस कहानी ने दिया उतना किसी भाषा की किसी दूसरी कहानी ने नहीं। जल्दी ही हिन्दुस्तान की लगभग सभी भाषाओं में और अंग्रेजी में उसका अनुवाद हो गया। सभी भाषाओं की तरह हिन्दी में भी उसका बड़ा जबर्दस्त स्वागत हुआ। 'अन्नदाता' के ठीक बाद कृशन की एक बिल्कुल अछूती चीज़ 'उर्दू का नया कायदा' छपी जिसमें बच्चे को वर्णमाला सिखाने की शैली में लेखक ने वर्तमान समाज की सभी असंगतियों, बुराइयों और ढकोसलों पर अपने व्यंग के; जहर में बुझे हुए तीर छोड़े। जो बात कही गयी है और जैसे कही गयी है, दोनों ही दृष्टियों से वह चीज़ बिलकुल लाजवाब है। अकेले टेकनीक के प्रयोग की दृष्टि से भी वह चीज बेजोड़ है। वह कहानी नहीं है, रिपोर्ताज नहीं है, स्केच नहीं है, निबन्ध नहीं है; मगर इन सभी के तत्व उसमें हैं। इन सभी कलारूपों के रासायनिक संमिश्रण से उपलब्ध वह एक नया ही कलारूप है, जो इनमें से एक भी नहीं है और सब है। मेरी जानकारी में, स्वयं कृशन ने फिर कभी ऐसी कोई चीज नहीं लिखी।

'अन्नदाता' के बाद उसी तरह लोगों को झकझोरनेवाली कहानी जो कृशनचंदर की कलम से निकली वह 'पेशावर एक्सप्रेस' थी जो इस संग्रह की पहली कहानी है। लेकिन इन दोनों कहानियों के दरमियान उसने 'तीन गुंडे' नाम की एक कहानी लिखी जो सरदार पटेल और दूसरे

कांग्रेसी नेताओं को एक खुली चुनौती थी। 'तीन गुंडे' जहाजियों की बगावत के समर्थन में, उनके काँधे से काँधा मिलाकर लड़नेवाली बम्बई की वीर शहरी जनता की कहानी है। इन बहादुरों को जिन्होंने सात दिन तक बम्बई की सड़कों पर अपनी इन्कलाबी लड़ाई लड़कर गोरी फौजों के दाँत खट्टे कर दिये, जिनके क्रान्तिकारी जोश को देखकर गोरे साम्राज्य-वादियों और काले-भूरे पूँजीपतियों दोनों को अपना ताश का महल ढहता दिखायी पड़ा, उनको सरदार पटेल ने 'गुंडे' कहा था। सरदार पटेल उन्हें और कह भी क्या सकते थे! उन्हें सचमुच उन इंकलाबियों से दिली नफ़रत थी, तभी तो उन्होंने उनके खिलाफ़ अँग्रेजों से (जो खुद भी डर गये थे और हवा के बदले हुए रुख को पहचानते हुए अपने पैंतरे भी बदल रहे थे) गठबन्धन करना कबूल किया, देश का बटवारा करना कबूल किया, देश की आजादी बेचना कबूल किया। कृशन ने अपनी कहानी में ऐसे ही तीन 'गुंडों' की तसवीर खींची है, जिन्होंने देश की सच्ची आजादी के लिए, बिना एक बार हिचके बम्बई की सड़कों को अपने गर्म लहू से सींचा। सरदार पटेल और उनकी गोष्ठी के नेता लोग लाख अपना गला फाड़ें, ये 'गुंडे' क्रान्तिकारी भारतीय जनता के प्रतीक हैं, रक्त और मांस के प्रतीक और इसी रूप में कृशनचंदर ने उन्हें जनता के दिलों में जगह दिलवायी है। इसमें शक नहीं कि लेखक ने उन्हें अच्छी जगह पर बिठाला है जहाँ वह रंग लाये बगैर नहीं रहेंगे, वह रंग जो आज की इन बड़ी बड़ी हस्तियों को बदरंग कर देगा! यह कहानी लिखकर कृशन ने पटेल और पाटिल के झूठ का पर्दा फ़ाश किया और उन्हें चुनौती दी।

यही चुनौती उसने 'पेशावर एक्सप्रेस' में इन शब्दों में दी:

'......बच्चे और मर्द हलाक हो गये तो औरतों की बारी आयी। और वहीं उसी खुले मैदान में जहाँ गेहूँ के खलिहान लगाये जाते थे और सरसों के फूल मुस्कराते थे और पतिव्रता स्त्रियाँ अपने पतियों के प्रणयातुर नेत्रों

के समस्त कमजोर शाखों की तरह झुकझुक जाती थीं, उसी लम्बे-चौड़े मैदान में जहां पंजाब के दिल ने हीर-राँझे और सोनी-महिवाल के अमर प्रेम के तराने गाये थे, उन्हीं शीशम और पीपल के दरख्तों के तले वक्ती चकले आबाद हुए। पचास औरतें और पाँच सौ महिवाल। शायद अब चेनाब में कभी बाढ़ न आयेगी। शायद अब कोई वारिसशाह की हीर न गायेगा। शायद अब मिर्ज़ा साहेबान की दास्ताने उल्फत इस मैदान में कभी न गूँजेगी। लाखों बार लानत हो उन रहनुमाओं पर और उनकी आइन्दा सात नस्लों पर जिन्होंने इस खूबसूरत पंजाब, इस अलबेले, प्यारे, सुनहरे पंजाब के टुकड़े-टुकड़े कर दिये थे और उसकी पाकीज़ा रूह को गहना दिया था और उसके मजबूत जिस्म में नफरत की पीप भर दी थी.........'

ऐसे शब्द तभी कलम से निकलते हैं जब दिल भरा होता है। ये एक पंजाबी के शब्द हैं जिसे अपने वतन पंजाब से, उसके खेत और खलिहानों, नदी और नालों, पेड़ और पौदों, फूल और पत्तियों से बड़ा गहरा प्यार था, जिसकी रग-रग में अलबेला, सुनहरा, प्यारा, रोमानी पंजाब रचा हुआ था। इसीलिए जब पंजाब के टुकड़े हुए तो उसे लगा कि जैसे उसके शरीर के टुकड़े हो गये और उसकी अन्तरात्मा विद्रोह कर उठी। पंजाब की ट्रैजेडी उसकी अपनी ट्रैजेडी हो गयी और तभी उसने 'हम वहशी हैं' की ये सात कहानियाँ लिखीं जिनमें इतना दर्द है और जो बर्बरता के खिलाफ इन्सानियत की चीखें हैं। पंजाब के पहले भी बहुत नरमेध हुआ था, कलकत्ते में, नोआखाली में, बिहार में, मगर वह लेखक के नजदीक अखबार की सुर्खियों से ज्यादा कुछ न बन सका। जब खुद उसके घर में या कहिए उसके जिस्म में आग लगी, तब वह खामोश न रह सका। अब तस्वीर का भयानकपन उस पर भी खुला। उसने गौर से देखा और पहचाना कि यह इंसान का नहीं वहशी का चेहरा है और हम सब इन्सान नहीं वहशी हैं! आदमी यह क्या से

क्या हुआ जा रहा है और यह दुनिया ! रहेगी भी या खून में डूब जायगी......

और तब उसने कलम उठायी उस वहशी के खिलाफ जिसके हाथ में छुरा था जिससे मासूम बच्चों का खून टपक रहा था, और उन शैतान के पुतलों, सेठों और साहूकारों, जमींदारों और राजों और नवाबों और गोरे सरकारी अफसरों के खिलाफ जिन्होंने वह छुरा उस वहशी के हाथ में पकड़ाया था और चाँदी के सिक्कों से उसकी जेब गर्म की थी इसलिए कि वह घरों और मुहल्लों और जिन्दा आदमियों को आग लगाये, इसलिए कि वह बच्चों और औरतों और बुड्ढों और खूबसूरत ताकतवर नौजवानों की लोथ से सड़कों और गलियों को पाट दे, इसलिए कि वह नन्हीं बच्चियों और बुड्ढी माँओं तक के साथ बलात्कार करे। इन 'खिदमतों' के सिले में उसे कुछ मिलना भी तो चाहिए न ! 'दूसरी मौत' 'लालबाग' और दूसरी कहानियों में टट्टी की ओट से शिकार करनेवाले महाजन का चिकना, कमीना, शैतान का चेहरा काफी अच्छी तरह उघड़ जाता है। 'दूसरी मौत' का सरदार दुहत्तड़सिंह तो खुद सेठ जी पर ही पलट पड़ता है जब उसको और 'काम' नहीं मिलता यानी न तो वह आदमी—नहीं आदमी नहीं, मुसलमान !—मिलता है जिस पर वह अपनी भूखी किरपान चला सके और न सेठ जी अब उसे पैसे ही देते हैं।

'हम वहशी हैं' की कथावस्तु दंगों, विशेषकर पंजाब के नरमेध, से ली गयी है इसमें शक नहीं, लेकिन वह पञ्जाब के नरमेध की कहानी नहीं है। वह कहानी है उन महाजनों और जागीरदारों और गोरे साम्राज्यवादियों की जिन्होंने इतिहास का सबसे बड़ा नरमेध इसलिए करवाया कि उनका स्वार्थ सधे। और वह कहानी है साम्प्रदायिक वैमनस्य से अंधी या उस के विष से जर्जर उस विशाल जनता की जो इसलिए या तो अपने वर्ग-शत्रुओं के जाल में फँस गयी और अपने वर्ग-भाइयों की हत्या करके

खुद अपनी गुलामी की जञ्जीरों को और कस बैठी, या निष्क्रिय होकर इस ध्वंस को देखती रही और उससे मोर्चा लेने के लिए आगे नहीं बढ़ी। ये कहानियाँ भी एक तरह की चुनौती हैं—उन न्यस्त स्वार्थों को, उन प्रतिक्रियाशील शक्तियों को जो अपना उल्लू सीधा करने के लिए अपने शोषण के जाल को और मजबूत करने के लिए जनता को इसी तरह आपस में लड़ाती हैं : 'तुम धर्म और सम्प्रदाय के नाम पर हिन्दू और मुसलमान जनता की पाँत में दरार डालकर उसे चिरकाल तक अपना गुलाम बनाये रखना चाहते हो, चूसते रहना चाहते हो ! अच्छा, तो मैं समाजवाद और अधिकारों के लिए शोषण के खिलाफ लड़ी गयी मिली-जुली लड़ाई के जरिये इस दरार को पूर दूँगा और नयी दरार नहीं पड़ने दूँगा,- और सब को लेकर हमला करूँगा तुम्हारी हवेली पर, तुम्हारे महलों और तुम्हारे किलों पर और वह दिन ले आऊँगा 'जब न कोई हिन्दू होगा न कोई मुसलमान होगा, बल्कि सब मजदूर होंगे और इन्सान होंगे।' (पेशावर एक्सप्रेस)

मगर उनकी यह चुनौती झूठी न जाये, कारगर हो, इसके लिए जरूरी था कि वह हमारी इन्सानियत, हमारी मनुष्यता को भी चुनौती दे। इसी-लिए जब हवा में सभी तरफ नारे चल रहे थे उसने भी एक भाला (उसे मैं 'नश्तर' का नाम नहीं दूँगा) सधे हुए हाथों से उस जहरबाद पर फेंका जो सभी लोगों के दिलों में घिर रहा था और जहर फैला रहा था, जिसकी वजह से ही वर्ग-शत्रु का जनविरोधी षड्यन्त्र सफल हुआ था और आगे भी हो सकता था ; जिसे ठीक करना सबसे पहले जरूरी था। 'इस [illegible] [illegible] [illegible] है। पहले चीर और सड़ा हुआ जहरीला खून निकल जाय और [illegible] साफ कर दिया जाय, तभी वह सूख सकता है और उसकी जगह नया मांस और नयी खाल आ सकती है।

[illegible] कहानियों में भी [illegible] है। आप भी देखेंगे कि उन कहानियों की [illegible] [illegible] [illegible] 'मनुष्यता-

वादी' नैतिकताएँ, व्यर्थ सिर पीटने और हाय हाय करने और टेसुए बहाने में नहीं है, बल्कि उस सच्चे मनुष्यतावाद में है जो अब समाजवाद के रूप में ही जी सकता है, उन वर्ग-सम्बन्धों की सच्ची तसवीर में है जिन्हें लेखक हाड़-मांस के पुतलों की शकल में हमारे सामने उघाड़कर रखता है। यह कमी जरूरत खटकती है कि जनता कहीं पर अपने शोषकों की इस साजिश के खिलाफ लड़ती और दूसरे सम्प्रदाय के अपने वर्ग-भाइयों से हाथ मिलाती नहीं दिखायी देती। लेकिन इतना जरूर है कि पर्दे के पीछे छिपे हुए शोषक वर्गों का चेहरा लोगों के सामने लाने में लेखक ने कोई कोर-कसर नहीं की है।

इसी रूप में इन कहानियों की उपादेयता दङ्गे की परिधि में सीमित नहीं है। ये दङ्गे की कहानियाँ नहीं हैं जिनके बारे में यह कहा जा सके कि भई, अब तो दङ्गे खत्म हो गये, अब इनकी क्या जरूरत। जब तक कि वह वर्ग नहीं मिटा है जो दङ्गे करवाता है, जनता को आपस में लड़-वाता है, युद्ध करवाता है तब तक तो इन कहानियों की सामयिक उपयो-गिता भी नष्ट नहीं होगी। दङ्गों और आपसी मारकाट का एक दौर खत्म हो गया, लेकिन इसका यह मतलब नहीं कि दूसरे और तीसरे और चौथे दौरों की आशंका मिट गयी। पञ्जाब और बिहार का नरमेध खत्म हो गया; लेकिन भूलना न चाहिए कि उससे भी बड़े नरमेध—महायुद्ध—की तैया-रियाँ जोर-शोर से हो रही हैं। उसके पीछे भी वे ही शक्तियाँ हैं, वे ही न्यस्त स्वार्थ हैं, वे ही गर्हित उद्देश्य हैं। उन्हें हराना जनता का काम है और जनता उन्हें हरा भी सकती है, अपनी चेतना से अपने संगठन से। इसीलिए उसे निरन्तर उन शक्तियों से, हर मोर्चे पर लोहा लेना है। जिस तरह वे हर ओर से जनता की लड़ाई पर हमला करते हैं, उसी तरह जनता को हर ओर से उनके ऊपर हमला करना है। 'हम वहशी हैं' से भी उन्हें इस लड़ाई में मदद मिलेगी।

मैंने कुछ लोगों को कृशनचन्दर की कहानियों पर यह एतराज़ करते सुना है कि उनमें प्लाट नहीं होता, चरित्र चित्रण नहीं होता, यह नहीं होता वह नहीं होता। मैं समझता हूँ कि अगर वे लोग कहानी कला की पुरानी किताबों में गिनाये गये कहानी के तत्वों की खोज बिलकुल उसी रूप में, आज की कहानी में करना छोड़ दें तो उनकी दिक्कत दूर हो जाय। कहानी का रूप उसकी कथावस्तु से अलग कोई चीज नहीं है कि कथावस्तु तो बदल जाय लेकिन कहानी का रूप बिल्कुल पहले जैसा ही बना रहे। वह हो ही नहीं सकता। कहानी की कथावस्तु, यानी सामाजिक यथार्थ, के बदलने के साथ साथ कहानी का रूप भी जरूरी तौर पर बदलता है और बदलता आया है। आज की कहानी 'पञ्चतन्त्र' की कहानी नहीं है और न वह भारतीय, चीनी, ग्रीक या रोमन पुराणों की ही कहानी है। वह मध्य युग के बोका-चियो और राबले की कहानी भी नहीं है। यहाँ तक कि वह देवकीनन्दन खत्री की कहानी भी नहीं है। आज की कहानी आज के युग की खास उपज है। यह कहना शायद गलत न होगा कि प्रेमचन्द हिन्दी और उर्दू दोनों के ही पहले कहानीकार थे—आधुनिक अर्थों में। मगर आज की कहानी कला किसी किसी जगह पर उनसे भी अलग दिशामें फूट रही है। ऐसी हर प्रवृत्ति ठीक ही है, यह मैं नहीं कहता। मगर यह मैं जरूर कहना चाहता हूँ कि नया सामाजिक यथार्थ पुराने बन्दों को तोड़े बिना नहीं रहेगा और कहानी के रूप को भी बदलना पड़ेगा जिसमें वह इस नये सामाजिक यथार्थ को अपने अन्दर समेट सके। जो लोग कृशन की कहानियों के रूप को लेकर वैसी आपत्तियाँ करते हैं वे सच पूछिए तो कहानी के क्षेत्र में रूढ़िवादी हैं और उनका विरोध अकेले रूप से नहीं कहानी की कथावस्तु से भी होता है। वे उस कथावस्तु को भी कहानी के लिए उचित नहीं ठहराते। कृशन को अपनी बात कहने से मतलब रहता है। उसे इसकी फ़िक्र नहीं कि उसकी कहानी की शक्ल तो नहीं बिगड़ रही है। जब तक वह अपनी बात अपने पढ़नेवाले के दिल में खूबी के साथ उतार सकता है तब तक उसकी

आंख के आगे हरी झंडी है, उसका रास्ता साफ है और वह धड़धड़ाता हुआ निकल जाता है।

और प्रखर कल्पनाशक्ति ही वह बिजली है जिससे उसकी कहानी की गाड़ी दौड़ती है। लेकिन यह बात भी कहनी पड़ेगी कि अगर कृशन की कहानियों में जीवन का संस्पर्श और गहराई से आये तो उसकी कहानी में एक नया ही जौहर पैदा हो जाय। जो कल्पनाशक्ति उसकी सबसे बड़ी ताकत है वही मेरी समझ में उसकी कमजोरी भी है। कमजोरी वह इस अर्थ में है कि जीवन के सीधे संस्पर्श का काम वह अपनी कल्पना से लेता है। इसीलिए उसकी तमाम कृतियों में, यहाँ तक कि उनमें भी जिनमें वह बिलकुल प्रगतिवादी विषयवस्तु को उठाता है, अकसर ठोस जिन्दगी का रंग दब जाता है और उसकी कल्पना का रंग उभर आता है। इस खामी के बावजूद उसकी कहानियाँ अपनी शक्ति से लोगों के दिल व दिमाग़ पर छा जाती हैं, इसका मतलब यह नहीं है कि यह खामी उनमें नहीं है या यह कि अगर उसे दूर किया जा सके तो कहानियों की प्रभावोत्पादकता और बढ़ नहीं जायगी। बल्कि मैं तो यह तक समझता हूँ कि आज की और एकदम निकट भविष्य की क्रान्तिकारी परिस्थिति में वास्तविक जिन्दगी से गहरा लगाव पैदा करने का सवाल प्रगतिशील लेखक के लिए सबसे बड़ा सवाल होगा और जो लेखक इस सवाल का ठीक जवाब नहीं दे सकेगा उसकी आगे की राह जरूर रुँध जायेगी। कृशन के साथ ऐसी कोई बात नहीं है। वह एक सजग लेखक है जो लगातार ज़माने के साथ कदम मिलाकर चल रहा है। 'आँगी' से 'तीन गुंडे' 'दूसरी मौत' या 'बुत बोलते हैं' तक वह एक बहुत लम्बा सफर तय कर आया है। 'आँगी' के रोमानी रंग में जिन्दगी के दूसरे रंग भी अब घुलमिल गये हैं। और चूँकि लेखक अपनी रोमानी दुनिया जनता से अलग कहीं नहीं बनाना चाहता बल्कि वह जनता के साथ है और उसे जनता के क्रान्तिकारी उठान से हमदर्दी है, इसलिए यह उम्मीद करना ग़लत न होगा कि उसमें वास्तविक जिन्दगी का रंग

और गहरा होता चला जायगा। मगर उसके लिए लेखक की ओ सचेत प्रयत्न अपेक्षित है। 'आँगी' से लेकर आज तक की उसकी रचन पर ऐतिहासिक दृष्टि डालने से पता चलता है कि कृशन एक रो कहानीकार है जो रोमांस से समाजवादी यथार्थवाद की ओर बढ़ रहा

कृशनचन्दर ने सामाजिक न्याय और प्रगति का खेमा अपने लिए लिया है, और उसमें रहकर वह उन सभी सरकारी और गैर-सरकारी नीमसरकारी शक्तियों से मोर्चा लेता है जो उसकी चौकी पर ह करती हैं।

इसीलिए जब वर्तमान सरकारों ने 'जन-सुरक्षा' के नाम पर जन-आ लनों पर हमला किया और जनता की रही-सही नागरिक स्वाधीनता छीन ली तो कृशन ने उसके खिलाफ भी सरकार को चुनौती दी। रुद्र भारद्वाज की जेल के भीतर मौत कांग्रेसी सरकार के ऊपर इतना कलंक है जो चिरकाल तक छुड़ाये न छूटेगा। उसी रुद्रदत्त भारद्वाज एक संस्मरण कृशन ने सरकार को चुनौती देते हुए ढंग से लिखा।

वह संस्मरण भारद्वाज को तो जनता के पास ले ही गया कृशन को भी ले गया। भारद्वाज के संस्मरण के अलावा जिसमें सर का जनविरोधी रूप पृष्ठभूमि का काम करता है, कृशनचन्दर ने सीधे सरकार के जनविरोधी रूप को भी उभाड़ा है, इसीलिए जहाँ एक बम्बई सरकार उसे 'पेशावर एक्सप्रेस' लिखने पर चेतावनी देती है, दूसरी ओर वह एक तेजी से बढ़ती हुई संख्या के पाठकों का प्रिय ले है जिसकी कहानियाँ वे ढूँढ़ ढूँढ़कर पढ़ते हैं।

इसमें रत्ती भर सन्देह की गुंजाइश नहीं है कि कृशन के इस संग्रह उर्दू ही के समान हिन्दी में भी जोरदार स्वागत होगा।

—अमृत

☆

पेशावर एक्सप्रेस

जब मैं पेशावर से चली तो मैंने छुकाछुक इतमीनान की साँस ली। मेरे डिब्बों में ज्यादातर हिन्दू लोग बैठे हुए थे। यह लोग पेशावर से, होती मरदान से, कोहाट से, चारसरा से, खैबर से, लंडी कोतल से, बन्नू, नौशहरा, मानसहरा से आये थे और पाकिस्तान में अपनी जान और माल को सुरक्षित न पाकर हिन्दुस्तान का रुख कर रहे थे। स्टेशन पर जबरदस्त पहरा था और फौजवाले बड़ी चौकसी से काम कर रहे थे। इन लोगों को जो पाकिस्तान में 'पनाहगुज़ीं' और हिन्दुस्तान में 'शरणार्थी' कहलाते थे, उस वक्त तक चैन की साँस न आयी जब तक मैंने पंजाब की प्रणय-सिक्त धरती की तरफ पैर न बढ़ाये। यह लोग शक्ल और सूरत से बिलकुल पठान मालूम होते थे। गोरे-चट्टे, मजबूत हाथ-पाँव, सर पर कुलाह और लुंगी, जिस्म पर कमीज और शलवार। यह लोग पश्तो में बात करते थे और कभी-कभी निहायत करख्त किस्म की पंजाबी में बात करते थे। इनकी हिफाजत के लिए हर डिब्बे में दो-दो सिपाही बन्दूकें लेकर खड़े थे। लंबे-चौड़े बलोची सिपाही अपनी पगड़ियों के पीछे मोर के छत्त की तरह खूबसूरत तुर्रे लगाये हुए, हाथ में नयी रायफिलें लिये हुए इन हिन्दू-पठानों और उनके बीवी-

बच्चों की तरफ मुस्करा-मुस्कराकर देखते थे, जो भय के कारण उस धरती से भागे जा रहे थे जहाँ वह हजारों साल से रहते चले आये थे ; जिसकी पथरीली सरजमीन से उन्होंने शक्ति प्राप्त की थी, जिसके बर्फ जैसे ठंडे झरनों से उन्होंने पानी पिया था और जिसके सुन्दर बागों से उन्होंने अंगूर का रस पिया था। आज यह मातृभूमि सरासर बेगाना हो गयी थी और उसने अपने मेहरबान सीने के किवाड़ उन पर बन्द कर लिये थे और वह एक नये देश के तपते हुए मैदानों की कल्पना दिल में लिये अनिच्छापूर्वक यहाँ से विदा हो रहे थे। इसकी खुशी जरूर थी कि उनकी जानें बच गयी थीं, उनका बहुत-सा माल-मता और उनकी बहुओं, बेटियों, माँओं और बीवियों की आबरू महफूज थी, लेकिन उनका दिल रो रहा था और आँखें सरहद के पथरीले सीने पर यूँ गड़ी हुई थीं गोया उसे चीरकर अन्दर घुस जाना चाहती हों और उसके वात्सल्यपूर्ण ममता के फव्वारे से पूछना चाहती हों, 'बोल माँ, आज किस जुर्म की सजा में तूने अपने बेटों को घर से निकाल दिया है ; अपनी बहुओं को उस खूबसूरत आँगन से महरूम किया है जहाँ वह कल तक सुहाग की रानियाँ बनी बैठी थीं ; अपनी अलबेली कुआँरियों को जो अंगूर की बेल की तरह तेरी छाती से लिपट रही थीं, झिंझोड़कर अलग कर दिया है ? किस लिए आज यह देश विदेश हो गया है !' मैं चलती जा रही थी। और डिब्बों में बैठी हुई मानवता अपने देश की पहाड़ियों और उसकी ऊँची-ऊँची चट्टानों, उसकी हरियालियों, उसकी हरी भरी तराइयों, कुंजों और बागों की तरफ यों देख रही थी जैसे हर जाने-पहचाने दृश्य को अपने सीने में छुपाके ले जाना चाहती है, जैसे निगाह हर पल रुक जाये। और खुद मुझे ऐसा मालूम हुआ कि इस महान् दुःख और पीड़ा के बोझ से मेरे कदम भारी हुए जा रहे हैं और रेल की पटरी मुझे जवाब दिये जा रही है।

हसन अब्दाल तक सब लोग यूँ ही रंजीदा, उदास, निराशा और विरक्ति की मूर्ति बने बैठे रहे। हसन अब्दाल के स्टेशन पर बहुत से

सिख आये हुए थे—पंजा साहब से। लम्बी-लम्बी किरपानें लिये, चेहरों पर हवाइयाँ उड़ती हुई, बाल-बच्चे सहमे-सहमे-से। ऐसा मालूम होता था कि अपनी तलवार के घाव से यह लोग खुद मर जायेंगे। डब्बों में पहुँचकर इन लोगों ने इतमीनान की साँस ली और फिर दूसरी सरहद के हिन्दू और सिख पठानों में बातचीत शुरू हो गयी। किसी का घर-बार जल गया था। कोई सिर्फ एक कमीज और शलवार में भागा था, किसी के पाँव में जूती न थी और कोई इतना होशियार था कि अपने घर की टूटी चारपाई तक उठाके लाया था। जिन लोगों का वाकई बहुत नुकसान हुआ था वह लोग गुमसुम बैठे थे—खामोश, चुपचाप। और जिसके पास कभी कुछ न हुआ था वह अपनी लाखों की जायदाद के खोने का गम कर रहा था और दूसरों को अपने काल्पनिक ऐश्वर्य के किस्से सुना-सुनाकर उन पर रोब डाल रहा था और मुसलमानों को गालियाँ दे रहा था। बलोची सिपाही बड़ी शान के साथ दरवाजों में राइफिलें थामे खड़े थे और कभी-कभी एक दूसरे की तरफ कनखियों से देखकर मुस्करा उठते।

तक्षशिला के स्टेशन पर मुझे बहुत अरसे तक खड़ा रहना पड़ा। न जाने किसका इन्तजार था। शायद आसपास के गाँव से हिन्दू शरणार्थी आ रहे थे। जब गार्ड ने स्टेशन-मास्टर से बार-बार पूछा तो उसने कहा, 'जब तक आसपास के गाँवों से हिन्दू शरणार्थियों का जत्था न आ जायेगा, यह गाड़ी आगे न जा सकेगी'। अब लोगों ने अपना खाने पीने का सामान खोला और खाने लगे। सहमे-सहमे बच्चे कहकहे लगाने लगे और मासूम कुँआरियाँ दरीचों से बाहर झाँकने लगीं और बड़े-बूढ़े हुक्का गुड़-गुड़ाने लगे। थोड़ी-देर बाद जोर से शोर सुनायी दिया और ढोलों के पीटने की आवाजें सुनायी देने लगीं! शरणार्थियों का जत्था आ रहा था शायद। लोगों ने सर निकालकर इधर-उधर देखा। जत्था दूर से आ रहा था और नारे लगा रहा था। वक्त गुजरता गया। जत्था करीब आता गया। ढोलों की आवाज तेज होती गयी। जत्थे के करीब आते ही गोलियों की

आवाज कानों में आयी और लोगों ने अपने सर खिड़कियों से पीछे हटा लिये। वह हिन्दुओं का जत्था था, जो आसपास के गाँवों से आया था! गाँव के मुसलमान लोग उसे अपनी हिफाजत में ला रहे थे चुनांचे हर एक मुसलमान ने एक काफिर की, जिसने जान बचाकर गाँव से भागने की कोशिश की थी, लाश अपने कन्धे पर उठा रखी थी। दो सौ लाशें थीं। मजमे ने यह लाशें निहायत इतमीनान से स्टेशन पर पहुँचकर बलोची दस्ते के सुपुर्द कीं और कहा कि वह इन जानेवालों को निहायत हिफाजत से हिन्दुस्तान की सरहद पर ले जाय। बलोची सिपाहियों ने सहर्ष इस बात का जिम्मा लिया और हर डिब्बे में दस-पन्द्रह लाशें रख दी गयीं। इसके बाद मजमे ने हवा में फायर किया और गाड़ी चलाने के लिए स्टेशन मास्टर को हुक्म दिया। मैं चलने लगी थी कि मुझे फिर रोक दिया गया और मजमे के सरगने ने हिन्दू शरणार्थियों से कहा कि दो सौ आदमियों के चले जाने से उनके गाँव वीरान हो जायँगे और उनकी तिजारत तबाह हो जायगी। इसलिए वह गाड़ी में से दो सौ आदमी उतारकर अपने गाँव ले जायेंगे, चाहे कुछ भी हो। वह अपने मुल्क को यों बरबाद होता हुआ नहीं देख सकते! इस पर बलोची सिपाहियों ने उनकी बुद्धि की प्रशंसा की और उनके देश-प्रेम को सराहा। उन्होंने हर डिब्बे से कुछ आदमी निकाल कर मजमे के हवाले किये। पूरे दो सौ आदमी निकाले गये। एक कम न एक ज्यादा।

'लाइन लगाओ, काफिरो' सरगने ने कहा। वह अपने इलाके का सबसे बड़ा जागीरदार था और अपने लहू की रवानी में जिहाद की गूँज सुन रहा था।

काफिर पत्थर के बुत बने खड़े थे। मजमे के लोगों ने उन्हें उठा-उठाकर एक लाइन में खड़ा किया। दो सौ आदमी। दो सौ जिन्दा लाशें, चेहरे उतरे हुए, आँखें फिजा में तीरों की बारिश-सी महसूस करती हुईं।

पहल बलोची सिपाहियों ने की। पन्द्रह आदमी फायरिंग से गिर गये।

यह तक्षशिला का स्टेशन था।

बीस और आदमी गिर गये।

यहाँ एशिया की सबसे बड़ी यूनीवर्सिटी थी और लाखों विद्यार्थी इस सभ्यता और संस्कृति के केन्द्र में विद्योपार्जन करते थे।

पचास और मारे गये।

तक्षशिला के अजायबघर में इतनी मूर्तियाँ थीं, इतने अपरूप आभूषण, मूर्तिकला के अद्वितीय उदाहरण, पुरानी सभ्यता के झिलमिलाते हुए चिराग।

पृष्ठभूमि में सरकोप का महल था और केलोन का एम्फीथिएटर और मीलों तक फैले हुए एक विराट् नगर के खँडहर। तक्षशिला के अतीत वैभव और महत्ता के अनुपम प्रतीक।

तीस और मारे गये।

यहाँ कनिष्क ने हुकूमत की थी और लोगों को अमन और चैन, हुस्न और दौलत से मालामाल किया था।

पचीस और खत्म हुए।

यहाँ बुद्ध भगवान् का अहिंसा का संदेश गूँजा था, यहाँ भिक्षुओं ने शान्ति का मार्ग दिखलाया था।

अब आखिरी गिरोह की मौत आ गयी थी।

यहाँ पहिली बार हिन्दोस्तान की सरहद पर इस्लाम का झंडा लहराया था, समता, भाईचारे और इन्सानियत का झंडा।

सब मर गये। अल्लाहो अकबर! फर्श खून से लाल था और जब मैं प्लेटफार्म से निकली तो मेरे पाँव रेल की पटरियों से फिसले जाते थे जैसे मैं अभी गिर जाऊँगी और गिरकर बाकी बचे हुए मुसाफिरों को भी खत्म कर डालूँगी।

हर डिब्बे में मौत आ गयी थी। लाशें दरम्यान में रख दी गयी थीं और जिन्दा लाशों का हुजूम चारों तरफ था और बलोची सिपाही मुस्करा

रहे थे। कहीं कोई बच्चा रोने लगा, किसी बूढ़ी माँ ने सिसकी ली, किसी के लुटे हुए सुहाग ने आह की और मैं चीखती-चिल्लाती रावलपिंडी के प्लेट-फार्म पर आ खड़ी हुई।

यहाँ से कोई शरणार्थी गाड़ी पर सवार न हुआ। एक डिब्बे में चन्द मुसलमान नौजवान पन्द्रह-बीस बुर्कापोश औरतों को लेकर सवार हुए। हर नौजवान रायफिल लगाये हुए था। एक डिब्बे में बहुत-सा सामानेजंग लादा गया—मशीनगनें और कारतूस, पिस्तौल और रायफिलें।

झेलम और गूजरखाँ के दरम्यानी इलाके में मुझे जंजीर खींचकर खड़ा कर दिया गया। मैं रुक गयी। मुस्लिम नौजवान गाड़ी से उतरने लगे। बुर्कापोश औरतों ने शोर मचाना शुरू किया। 'हम हिन्दू हैं। हम सिख हैं। हमें जबरदस्ती लिये जा रहे हैं,' उन्होंने बुर्के फाड़ दिये और चिल्लाने लगीं। नौजवान मुसलमान हँसते हुए उन्हें घसीटकर गाड़ी से बाहर निकाल लाये।

'हाँ, यह हिन्दू औरतें हैं। हम इन्हें रावलपिंडी से इनके आरामदेह घरों, इनके खुशहाल घरानों, इनके इज्जतदार माँ-बाप से छीन कर लाये हैं। हम इनके साथ जो जी में आयेगा, करेंगे। अगर किसी में हिम्मत है तो इन्हें हमसे छीन ले जाये।'

सरहद के दो नौजवान हिन्दू पठान छलाँग मारकर गाड़ी से उतर गये। बलोची सिपाहियों ने निहायत इतमीनान से फायर करके उन्हें खत्म कर दिया। पन्द्रह-बीस नौजवान और निकले। उन्हें मुसलह मुसलमानों के गिरोह ने खत्म कर दिया। गोश्त की दीवार लोहे की गोली का मुकाबिला नहीं कर सकती। मुसलमान नौजवान हिन्दू औरतों को घसीटकर जंगल में ले गये और मैं मुँह छिपाकर वहाँ से भागी। काला खौफनाक धुआँ मेरे मुँह से निकल रहा था जैसे सृष्टि पर प्रलय की कालिमा छा गयी हो और भाप मेरे सीने में यों उबलने लगी जैसे यह लोहे की छाती अभी फट जायगी और अन्दर भड़कते हुए लाल-लाल गोले इस

जंगल को जलाकर खाक कर डालेंगे जो इस वक्त मेरे आगे-पीछे फैला हुआ था और जिसने उन पंद्रह औरतों को निगल लिया था।

लालामूसा के करीब लाशों से इतनी घृणित सड़ाँद निकलने लगी कि बलोची सिपाही उन्हें बाहर फेंकने पर मजबूर हो गये। वह हाथ के इशारे से एक आदमी को बुलाते और उससे कहते, इस लाश को उठाकर यहाँ लाओ दरवाजे पर, और जब वह आदमी एक लाश उठाकर दरवाजे पर लाता तो वह उसे गाड़ी से बाहर धक्का दे देते। थोड़ी देर में सब लाशें एक-एक हमराही के साथ बाहर फेंक दी गयीं और डिब्बों में आदमी कम हो जाने से टाँगें फैलाने की जगह हो गयी।

लालामूसा गुजर गया और वजीराबाद आ गया। वजीराबाद का मशहूर जंक्शन। वजीराबाद का मशहूर शहर जहाँ हिन्दोस्तान-भर के लिए छुरियाँ और चाकू तैयार होते हैं। वजीराबाद जहाँ के हिन्दू और मुसलमान सदियों से बैसाखी का मेला बड़ी धूमधाम से मनाते चले आये हैं और उसकी खुशियों में इकट्ठे हिस्सा लेते हैं। स्टेशन लाशों से पटा हुआ था। शायद यह लोग बैसाखी का मेला देखने आये थे। लाशों का मेला। शहर में धुआँ उठ रहा था और स्टेशन के करीब अँग्रेजी बैंड की आवाज सुनायी दे रही थी और हुजूम की पुरशोर तालियों और कहकहों की आवाजें गूँज रही थीं। चन्द मिनटों में हुजूम स्टेशन पर आ गया। आगे-आगे देहाती नाचते और गाते आ रहे थे और उनके पीछे नंगी औरतों का हुजूम था। मादरजाद नंगी औरतें। बूढ़ी, नौजवान, बच्चियाँ, दादियाँ और पोतियाँ, माँएँ और बहुएँ और बेटियाँ, क्वाँरियाँ, और गर्भवती स्त्रियाँ, नाचते और गाते हुए आदमियों के जत्थे में थीं। औरतें हिन्दू और सिख थीं और मर्द मुसलमान और दोनों ने मिलकर यह अजीब बैसाखी मनायी थी। औरतों के बाल खुले हुए थे। उनके जिस्मों पर जख्मों के निशान थे और वह इस तरह सीधी तनकर चल रही थीं जैसे हजार कपड़ों में उनके जिस्म छिपे हों, जैसे उनकी आत्मा पर शान्त मृत्यु के भारी साये छा गये

हों। उनकी दृष्टि का तेज द्रौपदी को भी शरमा रहा था और होंठ दाँतों के अन्दर यों भिंचे हुए थे गोया किसी भयानक लावे का मुँह बन्द किये हैं। शायद अभी यह लावा फट पड़ेगा और अपनी आग से जहन्नम का नमूना बना देगा।

मजमे में से आवाज आयी 'पाकिस्तान जिन्दाबाद ! इसलाम जिन्दाबाद ! कायदे आजम जिन्दाबाद !' नाचते-थिरकते हुए कदम परे हट गये और अब यह अजीबो-गरीब हुजूम डिब्बों के सामने आ गया। डिब्बों में बैठी हुई औरतों ने घूँघट काढ़ लिये और डिब्बों की खिड़कियाँ फटाफट बन्द होने लगीं।

बलोची सिपाहियों ने कहा—'खिड़कियाँ मत बन्द करो, हवा रुकती है।'

लेकिन खिड़कियाँ बन्द होती गयीं। बलोची सिपाहियों ने बन्दूकें तान लीं—ठॉय-ठॉय। फिर भी खिड़कियाँ बन्द होती गयीं और फिर डिब्बे में एक खिड़की भी खुली न रही। हाँ, कुछ पनाहगुज़ीं जरूर मर गये थे।

नंगी औरतें पनाहगुजीनों के साथ बैठा दी गयीं और मैं 'इस्लाम जिन्दाबाद' और 'कायदे आजम जिन्दाबाद' के नारों के दरम्यान रुखसत हुई।

गाड़ी में बैठा हुआ एक बच्चा लुढ़कता-लुढ़कता एक बूढ़ी दादी के पास चला गया और उससे पूछने लगा, 'माँ, तुम नहाके आयी हो ?'

दादी ने अपने आँसुओं को रोकते हुए कहा, 'हाँ नन्हे, आज मुझे मेरे वतन के बेटों ने नहलाया है।'

'तुम्हारे कपड़े कहाँ हैं माँ ?'

'उन पर मेरे सुहाग के लहू के छींटे थे। बेटा, वह लोग उन्हें धोने के लिए ले गये हैं।'

दो नंगी लड़कियों ने गाड़ी से छलाँग लगा दी और मैं चीखती चिल्लाती आगे भागी और लाहौर पहुँचकर दम लिया।

मुझे नम्बर एक प्लेटफार्म पर खड़ा किया गया। नम्बर दो प्लेटफार्म पर दूसरी गाड़ी खड़ी थी। यह अमृतसर से आयी थी। इसमें हिन्दुस्तान के मुसलमान पनाहगुजीं बन्द थे। थोड़ी देर के बाद मुस्लिम खिदमतगार मेरे डिब्बों की तलाशी लेने लगे और जेवर और नकदी और दूसरा कीमती सामान जानेवालों से ले लिया गया। इसके बाद चार सौ आदमी डिब्बों से निकालकर स्टेशन पर खड़े किये गये। ये बलि के बकरे थे क्योंकि अभी-अभी नम्बर दो प्लेटफार्म पर जो मुस्लिम शरणार्थियों की गाड़ी आकर रुकी थी उसमें चार सौ मुसलमान मुसाफिर कम थे और पचास मुस्लिम औरतें भगा ले जायी गयी थीं। इसलिए यहाँ पर भी पचास औरतें चुन-चुनकर निकाल ली गयीं और चार-सौ हिन्दू मुसाफिरों को कत्ल किया गया ताकि हिन्दुस्तान और पाकिस्तान में आबादी का पलड़ा बराबर रहे।

मुस्लिम खिदमतगारों ने एक घेरा बना रखा था और छुरे उनके हाथ में थे। घेरे में बारी-बारी से एक शरणार्थी उनके छुरे की जद में आता था और बड़ी तेजी और सफाई से हलाक कर दिया जाता था। चन्द मिनटों में चार सौ आदमी खत्म कर दिये गये। और फिर मैं आगे चली।

अब मुझे अपने जिस्म के जर्रे जर्रे से घिन आने लगी थी। इस कदर पलीद और बदबूदार महसूस कर रही थी मैं जैसे मुझे शैतान ने सीधे जहन्नम से धक्का देकर पंजाब में भेज दिया हो।

अटारी पहुँचकर फिजा बदल-सी गयी। मुगलपुरे ही से बलोची सिपाही बदल दिये गये थे और उनकी जगह डोगरों और सिख सिपाहियों ने ले ली थी। लेकिन अटारी पहुँचकर तो हिन्दू शरणार्थियों ने मुसलमानों की इतनी लाशें देखीं कि उनके दिल खुशी से बाग बाग हो गये! आजाद हिन्दुस्तान की सरहद आ गयी थी वरना इतना सुन्दर दृश्य किस तरह देखने को मिलता। और जब मैं अमृतसर स्टेशन पर पहुँची तो सिखों के जयकारों ने जमीन-आसमान को हिला दिया। यहाँ भी मुसलमानों की

लाशों के ढेर के ढेर थे। और हिन्दू जाट और सिख हर डिब्बे में झाँक-कर पूछते थे, 'कोई शिकार है ?' मतलब यह कि कोई मुसलमान है ?

एक डिब्बे में चार हिन्दू ब्राह्मण सवार हुए। सर घुटा हुआ, लम्बी चोटी, राम-नाम की धोती बाँधे हरद्वार का सफर कर रहे थे। यहाँ हर डिब्बे में आठ-दस सिख और जाट भी बैठ गये। यह लोग रायफिलों और बल्लमों से मुसल्लह थे और पूर्वी पंजाब में शिकार की तलाश में जा रहे थे। इनमें एक के दिल में कुछ शुबहा-सा हुआ। उसने एक ब्राह्मण से पूछा, 'ब्राह्मण देवता किधर जा रहे हो ?'

'हरद्वार, तीर्थ करने।'

'हरद्वार जा रहे हो कि पाकिस्तान जा रहे हो ?'

'मियाँ अल्ला-अल्ला करो', दूसरे ब्राह्मण के मुँह से निकला।

जाट हँसा, 'तो आओ अल्ला-अल्ला करें। शिकार मिल गया भाई' इतना कहकर जाट ने नकली ब्राह्मण के सीने में बल्लम मारा। दूसरे ब्राह्मण भागने लगे। जाटों ने उन्हें पकड़ लिया। 'ऐसे नहीं ब्राह्मण देवता, जरा डाक्टरी मुआइना कराते जाओ। हरद्वार जाने से पहले डाक्टरी मुआइना बहुत जरूरी है न !'

डॉक्टरी मुआइने से मुराद यह थी कि वह लोग खतना देखते थे और जिसका खतना हुआ होता उसे वहीं मार डालते। चारों मुसलमान जो ब्राह्मण का भेस बदलकर अपनी जान बचाने के लिए भाग रहे थे मार डाले गये और मैं आगे चली।

रास्ते में एक जगह जंगल में मुझे खड़ा कर दिया गया और लोग यानी मुहाजिरीन और सिपाही और जाट और सिख सब निकल-निकलकर जंगल की तरफ भागने लगे। मैंने सोचा शायद मुसलमानों की बहुत बड़ी फौज उन पर हमला करने के लिए आ रही है। इतने में क्या देखती हूँ कि जंगल में बहुत सारे मुसलमान किसान अपने बीवी-बच्चों को लिये छुपे बैठे हैं। 'सत श्री अकाल !' और 'हिन्दू धर्म की जय !' के नारों की

गूँज से जंगल काँप उठा और मुसलमान किसान घेर लिये गये। आधे घंटे में सब सफ़ाया हो गया। बुड्ढे, जवान, औरतें, बच्चे सब मार डाले गये। एक जाट के बल्लम पर एक नन्हें से बच्चे की लाश थी और वह उसे हवा में घुमा घुमाकर कह रहा था, 'आयी बैसाखी आयी बैसाखी आयी बैसाखी।'

जलन्धर से उधर पठानों का एक गाँव था। यहाँ पर गाड़ी रोककर लोग गाँव में घुस गये। सिपाही और शरणार्थी और जाट। पठानों ने मुक़ाबिला किया। लेकिन आखिर में मारे गये। बच्चे और मर्द हलाक हो गये तो औरतों की बारी आयी। और वहीं उसी खुले मैदान में जहाँ गेहूँ के खलिहान लगाये जाते थे और सरसों के फूल मुस्कराते थे और पतिव्रता स्त्रियाँ अपने पतियों के प्रणयातुर नेत्रों के समक्ष कमजोर शाखों की तरह झुक झुक जाती थीं, उसी लंबे-चौड़े मैदान में जहाँ पंजाब के दिल ने हीर-राँझे और सोनी-महिवाल के अमर प्रेम के तराने गाये थे, उन्हीं शीशम और पीपल के दरख्तों के तले वक्ती चकले आबाद हुए। पचास औरतें और पाँच सौ खाविन्द। पचास भेड़ें और पाँच सौ कसाई। पचास सोहनियाँ और पाँच सौ महिवाल। शायद अब चेनाब में कभी बाढ़ न आयेगी। शायद अब कोई वारिसशाह की हीर न गायेगा। शायद अब मिर्जा साहबान की दास्तानेउल्फत इस मैदान में कभी न गूँजेगी। लाखों बार लानत हो उन रहनुमाओं पर और उनकी आइन्दा सात नस्लों पर जिन्होंने इस खूबसूरत पंजाब, इस अलबेले, प्यारे, सुनहरे पंजाब के टुकड़े-टुकड़े कर दिये थे और उसकी पाकीजा रूह को गहना दिया था और उसके मजबूत जिस्म में नफरत की पीप भर दी थी। आज पंजाब मर गया था। उसकी जबान गूँगी हो गयी थी, उसके गीत मुर्दा, उसका बेबाक निडर भोला-भाला दिल मुर्दा; और न महसूस करते हुए और आँख और कान न रखते हुए भी मैंने पंजाब की मौत देखी। खौफ और दहशत से मेरे कदम उसी पटरी पर रुक गये।

पठान मर्दों और औरतों की लाशें उठाये जाट और सिख और डोगरे और सरहदी हिन्दू वापस आये और मैं आगे चली। आगे एक नहर आती थी। ज़रा-ज़रा सी देर के बाद मैं रोक दी जाती। ज्योंही कोई डिब्बा नहर के पुल पर से गुज़रता लाशों को नीचे नहर के पानी में गिरा दिया जाता। इस तरह जब हर डिब्बे के रुकने के बाद सब लाशें पानी में गिरा दी गयीं तो लोगों ने देशी शराब की बोतलें खोलीं और मैं खून और शराब और नफ़रत की भाप उगलती हुई आगे बढ़ी।

लुधियाने पहुँचकर लुटेरे गाड़ी से उतर गये। और शहर में जाकर उन्होंने मुसलमानों के मुहल्लों का पता ढूँढ़ निकाला और वहाँ हमला किया और लूट-मार की और माले-गनीमत अपने कांधों पर लादे हुए तीन-चार घन्टों के बाद स्टेशन पर वापस आये। जब तक लूट-मार न हो चुकती, जब तक दस-बीस मुसलमानों का खून न बह जाता, जब तक सब शरणार्थी अपनी नफ़रत की प्यास न बुझा लेते, मेरा आगे बढ़ना दुश्वार क्या नामुमकिन था। मेरी रूह में इतने घाव थे और मेरे जिस्म का ज़र्रा ज़र्रा गन्दे नापाक खूनियों के कहकहों से इस तरह रच गया था कि मुझे गुस्ल की सख्त ज़रूरत महसूस हो रही थी। लेकिन मुझे मालूम था कि इस सफ़र में कोई मुझे नहाने न देगा।

अम्बाला स्टेशन पर, रात के वक्त मेरे एक फर्स्टक्लास के डिब्बे में एक मुसलमान डिप्टी कमिश्नर और उनके बीवी-बच्चे सवार हुए। इसी डिब्बे में एक सरदार साहब और उनकी बीवी भी थी। फौजियों के पहरे में मुसलमान डिप्टी कमिश्नर को गाड़ी में सवार कराया गया। और फौजियों को उनकी जानो-माल की सलामती के लिए सख्त ताकीद कर दी गयी। रात के दो बजे मैं अम्बाले से चली और दस मील आगे जाकर रोक दी गयी। फर्स्ट क्लास का डिब्बा अन्दर से बन्द था इसलिए खिड़की के शीशे तोड़कर लोग अन्दर गये। डिप्टी कमिश्नर और उनकी बीवी और उनके छोटे-छोटे बच्चों को कत्ल किया गया। डिप्टी कमिश्नर के एक

नौजवान लड़की थी और बड़ी खूबसूरत। किसी कॉलेज में पढ़ती थी। दो एक नौजवानों ने सोचा इसे बचा लिया जाय। यह हुस्न, यह ताजगी, यह जवानी किसी के काम आ सकती है। इतना सोचकर उन्होंने जल्दी से लड़की और जेवरात के बक्स को संभाला और गाड़ी से उतरकर जंगल में चले गये। लड़की के हाथ में एक किताब थी।

यहाँ यह कान्फ्रेंस शुरू हुई—लड़की को छोड़ दिया जाय या मार डाला जाय!

लड़की ने कहा, 'मुझे मारते क्यों हो? मुझे हिन्दू कर लो। मैं तुम्हारे मजहब में दाखिल हुई जाती हूँ। तुममें से कोई एक मुझसे ब्याह कर ले। मेरी जान लेने से फायदा?'

'ठीक तो कहती है।' एक बोला—

'मेरे ख्याल में......'

दूसरे ने बात काटते हुए और लड़की के पेट में छुरा भोंकते हुए कहा, 'मेरे ख्याल में तो इसे खत्म कर देना ही बेहतर है। चलो गाड़ी में वापस चलो। क्या कान्फ्रेन्स लगा रक्खी है तुमने।'

लड़की जंगल में घास के फर्श पर तड़प-तड़प कर मर गयी। उसकी किताब उसके खून से तरबतर हो गयी। किताब का नाम था Socialism—Theory and Practice by John Strachey. वह जहीन लड़की होगी, उसके दिल में मुल्क और कौम की खिदमत के इरादे होंगे। उसकी रूह में किसी से मुहब्बत करने, किसी को चाहने, किसी के गले लग जाने, किसी बच्चे को दूध पिलाने का जज़्बा होगा। वह लड़की थी, माँ थी, बीवी थी, प्रेयसी थी—वह विश्व में सृष्टि का पवित्र रहस्य थी। और अब उसकी लाश जंगल में पड़ी थी और गीदड़ और गिद्ध और कौवे उसकी लाश को नोच नोचकर खायेंगे।

'सोशलिज़्म : सिद्धान्त और प्रयोग'—वहशी दरिन्दे इन्हें नोच नोचकर खा रहे थे और कोई नहीं बोलता, कोई आगे नहीं बढ़ता। और कोई इन्कलाब का दरवाजा नहीं खोलता। और मैं रात की निस्तब्धता आग और शरारों को छिपाये आगे बढ़ रही हूँ और मेरे डिब्बों में लोग शराब पी रहे हैं और महात्मा गाँधी की जयकारें बोल रहे हैं।

एक अरसे के बाद मैं बम्बई वापस आयी हूँ, यहाँ मुझे नहला-धुलाकर शेड में रख दिया गया है। मेरे डिब्बे में अब शराब के भभके नहीं हैं, खून के छींटे नहीं हैं, वहशी खूनी कहकहे नहीं हैं मगर रात की तनहाई में जैसे भूत जाग उठते हैं। मुर्दा रूहें बेदार हो जाती हैं और जख्मियों की चीखें और औरतों के बैन और बच्चों की पुकार हर तरफ फ़िज़ा में गूँजने लगती है और मैं चाहती हूँ कि अब मुझे कभी कोई उस सफ़र पर न ले जाये। मैं इस शेड से बाहर नहीं निकलना चाहती। मैं इस खौफ़नाक सफ़र पर दुबारा नहीं जाना चाहती। अब मैं उस वक्त जाऊँगी जब मेरे सफ़र में दोतरफ़ा सुनहरे गेहूँ के खलिहान लगेंगे और सरसों के फूल झूम-झूम कर पंजाब के रसीले उल्फ़त भरे गीत गायेंगे। और किसान, हिन्दू और मुसलमान दोनों मिल कर खेत काटेंगे, बीज बोयेंगे और उनके दिलों में [illegible] और आँखों में शर्म और रूहों में औरत के लिए प्यार और मुहब्बत और इज़्ज़त का जज़्बा होगा।

मैं लकड़ी की एक बेजान गाड़ी हूँ लेकिन फिर भी मैं चाहती हूँ कि इस खून और गोश्त और नफ़रत का बोझ मुझ पर न लादा जाए। मैं दुर्भिक्ष पीड़ित इलाकों में अनाज ढोऊँगी। मैं कोयला और नमक और [illegible] लेकर कारखानों में जाऊँगी। मैं किसानों के लिए नये हल और [illegible] ले जाऊँगी। मैं अपने डिब्बों में किसानों और मज़दूरों को

खुशहाल टोलियाँ लेकर जाऊँगी और सतीत्वपूर्ण स्त्रियों की मीठी निगाहें अपने मर्दों का दिल टटोल रही होंगी और उनके आँचलों में नन्हें मुन्ने बच्चों के, खूबसूरत बच्चों के चेहरे कमल के फूलों की तरह खिले नजर आयेंगे। और वह इस मौत को नहीं, बल्कि आनेवाली जिन्दगी को झुक-कर सलाम करेंगे जब न कोई हिन्दू होगा न कोई मुसलमान होगा, बल्कि सब मजदूर होंगे और इन्सान होंगे।

अंधे

चौक बसी के अन्दर कूचा पीर जहाज़ी में सिर्फ दो घर हिन्दुओं के थे। एक तिमंज़िला मकान, गली में सबसे ऊँचा और खुशहाल मकान, लाला भंगीराम खत्री का था। वह पंजाबी खत्री न थे, युक्तप्रान्त के खत्री थे और हर वक्त हिन्दोस्तानी में बात करते थे। इसलिए सब पंजाबियों को उनसे नफ़रत थी—लालाजी की ज़ुबान क्या कतरनी की तरह चलती थी। उनके घर की औरतें नाच-गाने की बड़ी शौक़ीन थीं। रेडियो हर वक्त चलता रहता था। पुष्पा, घर की सबसे छोटी लड़की, सोलह-सत्रह बरस की होगी। अक्सर तिमंज़िले मकान की छत पर खड़ी हो कर मुझे उकसाने के लिए नाच किया करती। मैं अपने मकान की छत से और वह अपने मकान की छत से एक दूसरे से [illegible] किया करते। बाप मेरा मुसलमान था और [illegible]। मैं [illegible] था और वह खत्री—बी० ए० की [illegible]। [illegible]

बंशीराम खत्री के घराने से चिढ़ थी। और वैसे तो यह लोग काफी कमीने थे। मुसलमानों को अच्छा नहीं समझते थे। और ईमान की बात तो यह है कि कौन काफिर ऐसा है जो मुसलमानों से धोखा न करता हो। यह तो उन लोगों के खमीर में है। हिन्दू मुसलमान का-सा दिल नहीं रखता,—जिस तरह मुसलमान सब के सामने साफ और खरी बात कह देता है। हिन्दू तो बस ज़बान का मीठा है, अन्दर से विष भरा है। जिसने हिन्दू के बच्चे पर एतबार किया वह मरा!

दूसरा घर रामनरायण ब्राह्मण का है। यह घर बिल्कुल हमारे घर के सामने है। रामनरायण की माँ एक लड़ाका औरत है। मोहल्ले भर की औरतें एक तरफ और वह एक तरफ। ज़ुबानी गाली-गलौज में उससे कोई बाज़ी नहीं ले सकता। ऐसे कड़वे और टेढ़े लहजे में बात करती है कि आदमी का दिल जल-भुन कर कबाब हो जाता है। हमारे यहाँ चमारिनें ताने-तिश्ने, गाली-गलौज में बेहद होशियार हैं, मगर रामनरायण की माँ के आगे वह भी हाथ जोड़ती हैं। सारा मोहल्ला उससे नाराज़ था।

रामनरायण खुद बेहद शरीफ़ ब्राह्मण था। गाय की तरह धीमी चाल का, और भोला-भोला-सा, हर वक्त अपने धर्म-दान में मगन रहता। हरेक से हँस कर बात करता। मैंने कभी उसके मुँह से गाली नहीं सुनी, कोई कड़ुवा बोल नहीं सुना। मोहल्ले भर में किसी से लड़ाई नहीं लेता। ऐसा आदमी भी किस काम का—यानी किसी से लड़ेगा ही नहीं। अब जब दूसरा आदमी इस हद तक मीठा हो तो हम किस तरह उससे झगड़ें। उससे झगड़ने को बहुत जी चाहता, मगर हमेशा तरह दे जाता। मुझे तो ऐसे आदमियों से सख्त चिढ़ है। एक ही मोहल्ले में तो रहते हैं। कभी तो बरतन साथ साथ रखे हुए खड़खड़ा उठते हैं। और एक तुम हो कि कभी बोलते ही नहीं। रामनरायण को जब देखो भीगी बिल्ली बना हुआ सिर झुकाए गली से बाहर आ रहा है, घर के अन्दर जा रहा है। किसी ने

बुलाया झट बत्तीसी निकाल कर हाथ जोड़ लिये। बड़ा ही बुजदिल ब्राह्मण था—मालखोर !

रामनरायण के तीन बच्चे थे। तीनों स्कूल में पढ़ते थे। चौथा लड़का कोई एक साल का होगा। उसे अक्सर मैंने रामनरायण की बीबी के थनों से लटकता हुआ उसके घर के दरवाज़े पर देखा था। यह हिन्दू औरतें कितनी बेहया होती हैं—न पर्दा, न शर्म, न लाज—सब के सामने छाती खोल कर दूध पिलाने लगती हैं अपने बच्चों को। और यह बच्चे भी क्या चुसर-चुसर दूध पीते हैं, मादर.........

जब दंगा शुरू हुआ तो शुरू-शुरू में यहाँ सुलह-कमेटी बनी। इसमें लाला बंशीराम खत्री और रामनरायण भी शामिल थे। हम लोग इस झंझट में नहीं थे। मुसलमानों की तरफ से हमने मसजिद के मुल्ला जी और लकड़ियों की टाल के मालिक फतेह मोहम्मद को भेज दिया था। दर असल हमारा जी इस सुलह कमेटी में नहीं था। कोई छेड़ छाड़ हो, मार-पीट हो, धौलधप्पा हो, तो उसमें मज़ा है। यह क्या कि अन्दर ही अन्दर तो ज़हर भरा है और ऊपर से सुलह कमेटियाँ बना रहे हैं। हमने सोचा चलो इन्हें कमेटियाँ बनाने दो। यह चलने चलाने की चीज़ें नहीं हैं।

लाला बंशीराम खत्री बहुत परेशान मालूम होते थे और इस सिल-सिले में बहुत दौड़-धूप कर रहे थे। चौधरी फतेह मोहम्मद ने उनसे साफ कह दिया कि अगर वह ठीक ढंग से रहे तो कोई मुसलमान उन पर हाथ नहीं उठाएगा। हाँ, अगर उन्होंने ज़्यादा चीं-चपड़ की और फ़ों-फ़ाँ से काम लिया तो उनके जान-माल की खैर नहीं !

लाला बंशीराम भरी महफिल में हाथ जोड़कर खड़े हो गए। बोले—'हम तो पचास बरस से आपके पड़ोसी हैं। हमारे दादा लाला सुलखन राम आनरेरी मजिस्ट्रेट भी यहीं रहते थे।'

यह सुनकर बूढ़ा पीरां बख्श बोला—'उनकी बात रहने दो। एक ही हरामी था तुम्हारा दादा सुलखनराम आनरेरी मजिस्ट्रेट। मेरे बेटे को

छ: मास की कैद सुनाई थी। और क्या ज़रा-सी बात थी। उसने बनिये की दुकान से दस रुपये उठा लिये थे......'

अभी बूढ़ा पीराँ बख्श कुछ और कहने जा रहा था कि लोगों ने बीच-बचाव कर उसे चुप कर दिया। लाला बंशीराम की बहुत हेठी हुई, पर उन्होंने चुप रहना ही ठीक समझा। और अगर लाला बोलता भी तो बुरी तरह पिटता। कई मुसलमान जवान ऐसे थे जो वह ज़रा भी ऐसी-वैसी बात मुँह से निकालता तो उसकी खाल वहीं उधेड़ कर रख देते। खैर, यह सुलह कमेटी थी। कितने दिन रहती—खतम हो गई!

पहले तो कोई नहीं बोला, पर जब बिहार में मुसलमानों पर आफत आ पड़ी तो हमारा खून भी खौलने लगा। यह साले ऊपर चढ़े जा रहे थे। अरे, अभी कल की बात है कि हम सारे हिन्दोस्तान के बादशाह थे और यह दाल खानेवाले काफिर हमारी जूतियों तले लोटते थे। और आज उनकी यह हिम्मत हो गई! चुनांचे मैंने, और रशीद भाई ने और बच्छे मोची ने और गल्ले पहलवान ने और गली के दूसरे आठ-दस जवान-जवान छोकरों ने फैसला कर लिया कि यहाँ हिन्दुओं को इसका मज़ा चखाकर रहेंगे। मसजिद के मुल्ला ने उम्मीद के खिलाफ हमें बुरा-भला कहा। पर हम वैसे तो चुप रहे, मगर अन्दर ही अन्दर हम अपनी स्कीम की पूरी तैयारी करते रहे। दो-चार दिनों में हमने अपने घरों की औरतों को भाईगेट भेज दिया। क्योंकि चौक बस्ती का कूचा पीर जहाज़ी लाख मुसलमानों का मोहल्ला सही, फिर भी शाह आलमी का दरवाज़ा यहाँ से बहुत पास है और शाह आलमी के दरवाज़े में हिन्दुओं का ज़ोर था। किसी वक्त भी यहाँ हमला हो सकता था। हमने यही ठीक समझा कि अपनी औरतों और बच्चों को भाईगेट भेजकर बेफिक्र हो जाएँ। इसलिए हमने ऐसा ही किया।

इसके थोड़े दिनों के बाद ही दंगा शुरू हो गया। शुरू हिन्दुओं ने किया। कृष्ण गली में, राम गली में, कृष्णनगर में, सन्त नगर में, शाह

आलमी में—जहाँ-जहाँ लाहौर में हिन्दुओं का ज़ोर था, वहाँ इक्के-दुक्के मुसलमान मारे जाने लगे।

अब हम लोग कहाँ तक चुप रहते। मुसलमान गरीब हो, बेवकूफ हो, निकम्मा हो, मगर बुज़दिल नहीं है। एक दफा अल्लाह का नाम लेकर जो लाहौर का मुसलमान उठा तो दो ही रोज़ में हिन्दुओं और सिखों को अपनी नानी याद आ गई। अकबरी दरवाज़े से माईगेट तक और शाह आलमी से शाही मोहल्ले तक हर जगह नारये तकबीर सुनाई देने लगा। सब बनिये, लाले, बाम्हन, अपनी माओं की गोद में दुबक कर बैठ गये।

कूचा पीर जहाज़ी के नौजवान मुसलमान भी कहाँ चुप बैठनेवाले थे। पहले तो हमने लाला बंशीराम खत्री के मकान में घुस जाने की कोशिश की, मगर इस बदमाश ने बड़ा पक्का इन्तजाम कर रखा था—लोहे का दरवाज़ा उसने हाल ही में लगाया था और मकान के पीछे हिन्दुओं का मोहल्ला था—सुरबन का मोहल्ला जहाँ कई मुसलमानों की जानें जा चुकी थीं। इसलिए हम पिछवाड़े से हमला नहीं कर सकते थे और सामने लोहे का दरवाज़ा था। दो-तीन बार हल्ला बोल कर हमलोग चुप हो गये। आखिर तंग आकर हमने उसके घर में आग लगा दी।

अब क्या किया जाए। उसके घर में कितनी ही ढूँढ़ने पर भी न मिलनेवाली और कीमती चीज़ें थीं और सुना है कि बहुत सा ज़ेवर और अनाज भी था। पर हमें कुछ न मिला। मकान ऐसे जला जैसे चूल्हे में सूखी लकड़ी चटख-चटख जलती है। लपटें दूर-दूर तक दिखाई देती थीं। लाला बंशीराम ने अपने-आप को और अपने घरवालों को बचाने की बड़ी कोशिश की। मगर बेचारा कामयाब न हो सका। बहुत बहुत मिन्नतें और खुशामदें उसने कीं, मगर हमलोग हँसा किये। बस, मुझे एक पुष्पा के मरने का अफसोस है। मेरे बस में होता तो मैं उसे मरने से बचा लेता। वह मकान के अन्दर आग में जीते-जी जल कर मर गई और मैं कुछ न कर सका। करता भी क्या, उस वक्त लोग कहते—मुसलमान हो,

कर हिन्दू की तरफ़दारी करता है। इस खयाल से चुप हो गया। मरते वक्त न जाने उसकी क्या हालत थी। तीसरी मंजिल से ऊपर छत की ओर जाते हुए तो उसे देखा था। परेशानी की हालत में भाग रही थी। लाला बंशीराम की बीवी के सारे कपड़े जल रहे थे और उसने तीसरी छत से नीचे छलांग लगा दी थी। खैर जलती आग से कौन बच सकता है।

जब लाला बंशीराम का मकान जल रहा था तो किसी ने देखा कि हिन्दुओं का दूसरा मकान उसी तरह, अच्छे-भले रूप में, सुरक्षित है। सब लोग रामनरायण ब्राह्मण के घर की तरफ़ देखने लगे जो इस समय सबके सामने सवालिया निशान बन कर खड़ा था। फिर हम सब लोग उस घर की तरफ़ बढ़े। एक मामूली सा किवाड़ था। एक चटखनी अन्दर से लगी थी। दरवाज़ा खटखटाने पर जब किसी ने जवाब न दिया तो रशीद भाई और गल्ले पहलवान ने कंधों से टक्करें लगाकर दरवाज़े को तोड़ दिया। अन्दर सामने ही रामनरायण ब्राह्मण हाथ जोड़े खड़ा था। बेचारा थर थर काँप रहा था।

रशीद ने पूछा—'दरवाज़ा क्यों नहीं खोला, सुअर!'

'जी.......जी.......मैं सो रहा था।'

मुझे बड़ी हँसी आई, मगर मैं जब्त कर गया।

गल्ले पहलवान ने कहा—'अब यहाँ खड़ा-खड़ा क्या कर रहा है। चल, बाहर चल।'

'बाहर जाके क्या करूँगा।'

'बाहर तो निकल, यहाँ खड़ा-खड़ा क्या जवाब देता है।'

गल्ले पहलवान ने उसकी गुद्दी पर हाथ रखा और उसे एक धक्का जो दिया तो वह सीधा चौखट से बाहर। वह चौखट से बाहर गिर रहा था कि फज्जे ने उसकी पीठ में चाकू मारा और वह वहीं फर्श पर धड़ाम से गिरकर तड़पने लगा।

उसकी माँ रोती-पीटती बाहर आई। फज्जे ने उसे भी चाकू मारा और

वह भी वहीं ढेर हो गयी, अपने तड़पते हुए बेटे की लाश पर गिर गई। इसके बाद रामनरायण की बीवी की बारी आई। उसने ज्यादा परेशान नहीं किया। चार बच्चों की मा थी और बदसूरत। कोई उसे मुसलमान बनाने के लिए भी तैयार नहीं था। लेकिन हैरत की बात तो यह है कि उसका सबसे छोटा लड़का जो एक साल का था अब तक पंगोड़े में पड़ा सो रहा था—निहायत इत्मीनान से, जैसे कुछ हुआ ही न हो।

हम सब लोग पंगोड़े की तरफ गये। बच्चा सो रहा था। रशीद ने छुरा निकाला। एकाएक मेरे हाथ ने उसे रोक दिया।

'क्यों,' रशीद ने कहा—'साँप का बच्चा है।'

'जाने दो,' मैंने कहा—बड़ा होगा, मार डालेंगे।

'नहीं,' फज्ले ने ज़रा नरमी से कहा।

'नहीं!' मैंने ज़रा सख्ती से कहा—छोड़ दो इसे!

दर असल मुझे अपना नन्हा याकूब याद आ गया था। उसकी उम्र इस वक्त एक साल की थी। बच्चे को छोड़ कर हम लोग घर का साज़ो-सामान देखने लगे। डेढ़ दो हज़ार के जेवर लिये और आठ सौ रुपया नक़द। वह हम लोगों ने आपस में बाँट लिया। कपड़ों के सन्दूक में बच्चों के कपड़े थे जो अभी स्कूल से वापिस नहीं आये थे। रामनरायण की माँ की शादी के जोड़े थे जो उसने अब तक सम्हाल कर रखे हुए थे। फिर खुद रामनरायण की बीवी के दहेज़ के कपड़े थे। यह भी हम लोगों ने बाँट लिये।

मेरे हिस्से में छ रेशमी साड़ियाँ आईं और दूसरे सूती कपड़े। गहनों में मैंने बीवी के लिए कानों के झुमके जरूर लिये—और माथे का झूमर और चाँदी का गिलास। माले ग़नीमत सम्हाल कर हम लोगों ने नारये तकबीर बुलन्द किया।

बाहर फर्श खून से लाल था। गोभी के गले-सड़े टुकड़ों और बेकार चमड़े के टुकड़ों और केले के छिलकों के बीच में, नाली के पास, रामनरा-

यण और उसकी माँ और उसकी बीवी की लाशें पड़ी थीं। सामने वंशी राम खत्री का मकान जल रहा था और लोहे के दरवाज़े के सामने उसकी बीवी की लाश पड़ी थी जिसने तीसरी मंज़िल से छलांग लगाई थी। सब घर खामोश थे, सब दुकानें बन्द थीं, गलियाँ सुनसान थीं और बाज़ार वीरान। कहीं-कहीं लीग के झंडे लगे हुए थे। हम लोगों ने एक दूसरे की तरफ़ देखा और फिर अलग-अलग गलियों में बँट कर अपने-अपने घर की राह ली। गल्ला मती गेट चला गया। फ़जा अकबरी मंडी चला गया। मैं और रशीद भाई गेट की ओर रवाना हुए जहाँ दाता के दरबार के पिछवाड़े हमने अपने बीवी-बच्चों को रख छोड़ा था—चचा नूरा के ही घर में।

दाता के दरबार के पास मुसलमानों का एक बहुत बड़ा जमघट था और अल्लाहो अकबर के नारे बुलन्द कर रहा था। पूछने पर पता चला कि दर्शन नगर के हिन्दुओं की महासभाई टोली ने दाता के दरबार की ओर पीछे से हमला कर दिया और आते ही आग लगा दी। हम लोग भागे-भागे अपने घर की तरफ़ दौड़े। रास्ते में चचा नूरा सिर पीटते हुए मिले। बोले—'बले बेटा गजब हो गया!'

'क्या हुआ, चाचा?' मैंने घबराकर कहा।

'हिन्दुओं ने हमारे घर में आग लगा दी। तेरी चची जल कर मर गई। हाय, हाय!'

'और मेरी बीवी?' मैंने घबराकर पूछा।

'काफ़िरों ने उसे जान से मार डाला!'

घर राख का ढेर था। अभी आग पूरी तरह से बुझी न थी। दरवाज़े पर मेरी बीवी की लाश थी। उसका सिर किसी ने कुचल दिया था। मेरा बड़ा बेटा दाऊद, सात बरस का दाऊद, चाँद-सा बेटा दाऊद, उसके पास ही मुर्दा पड़ा था। उसकी गरदन में एक गहरी फाँक खुली हुई थी।

मैं अपने बच्चों के लिए कपड़े लाया था। अपनी बीवी के लिए माथे का झूमर और बनारसी साड़ियाँ। मेरे अल्लाह, यह क्या गजब है।

मैंने चचा से पूछा—और मेरा याक़ूब तो सलामत है ?—कह दो चचा, सलामत है।

चचा नूरा बोले—उसे काफ़िरों ने पहले तो छोड़ दिया था। फिर किसी ने कहा, यह तो साँप का बच्चा है। इस पर उन्होंने उस पर भी पेट्रोल छिड़क दिया। वह है तुम्हारा याक़ूब ?

कोने में कुछ जली हुई हड्डियाँ और राख में लिपटा हुआ सिर—छोटा-सा, नन्हा-सा, राख हुआ सिर !

'तुम क्या सब मर गए थे चचा !'

'मोहल्ले में कोई मर्द नहीं था,' नूरा ने कहा—हम लोग सब लूट मार के लिए गये हुए थे। किसे मालूम था, बुजदिल हमारी गैर हाज़िरी में हमला करेंगे—वह भी इस तरह, निहत्थी औरतों पर !

मैंने साड़ियाँ और जेवर और चाँदी का गिलास अपनी बीवी की लाश के सामने रखा और उससे कहा—मुझे तेरी क़सम है आयशा, अगर तेरे खून का बदला न लिया तो मैं अपने बाप की नहीं किसी सुअर की औलाद हूँ।

इतना कह कर मैंने फिर छुरे को हाथ में पकड़ा और गली के बाहर चला। रशीद मेरे साथ हो लिया।

'अब कहाँ जा रहे हो ?—पुलिस आ रही है !'

पुलिस की माँ की......पुलिस की बहन की...मैं इस वक्त सीधा शाह आलमी जा रहा हूँ। किसी में हिम्मत हो तो मुझे रोक ले—अल्लाहो अकबर !



एक तवायफ़ का ख़त

मुझे उम्मीद है कि इससे पहले आपको किसी वेश्या का पत्र नहीं मिला होगा। यह भी उम्मीद करती हूँ कि आपने मेरी और इस पेशे की दूसरी औरतों की सूरत भी न देखी होगी। यह भी जानती हूँ कि आपको मेरा खत लिखना किस हद तक बुरा है,—और वह भी ऐसा खुला खत। मगर क्या करूँ, हालात कुछ ऐसे हैं और इन दोनों लड़कियों का तक़ाज़ा इतना शदीद है कि मैं यह खत लिखे बगैर नहीं रह सकती।

यह खत मैं नहीं लिख रही हूँ। यह खत मुझसे बेला और बुतूल लिखवा रही हैं। इस लिए मुझे माफ़ कीजिएगा। एक गिरी हुई औरत आपको इस बेबाकी से खत लिख रही हूँ—सच्चे दिल से मैं माफी चाहती हूँ। अगर मेरे खत में कोई फ़िकरा आपको नागवार लगे तो उसे मेरी मजबूरी समझ कर छोड़ दीजिएगा।

बेला और बुतूल मुझसे यह खत क्यों लिखवा रही हैं—और उनका तक़ाज़ा इस कदर शदीद क्यों है—यह सब बताने से पहले मैं आपको अपने बारे में कुछ बताना चाहती हूँ। घबराइए नहीं, मैं आपको अपनी घिनौनी जिन्दगी के इतिहास से आगाह नहीं करना चाहती। मैं यह

भी नहीं बताऊँगी कि मैं कब और किस हालत में वेश्या बनी। भल-मनसाहत की दुहाई देकर मैं आपसे किसी झूठे रहम की दरख्वास्त करने नहीं आयी हूँ। मैं आपके दर्दमन्द दिल को पहचान कर अपनी सफाई में झूठी कहानी भी नहीं गढ़ना चाहती। इस खत के लिखने का मतलब यह नहीं है कि आपके सामने वेश्या-जीवन के रहस्य और भेदों को खोल कर रखूँ। मुझे अपनी सफाई में कुछ नहीं कहना है। मैं अपने बारे में सिर्फ चन्द ऐसी बातें बताना चाहती हूँ जिनका आगे चल कर बेला और बुतूल की जिन्दगी पर असर पड़ सकता है।

आप लोग कई बार बम्बई आये होंगे। जिन्ना साहब ने तो बम्बई को बहुत देखा है। मगर आपने हमारा बाज़ार काहे को देखा होगा। जिस बाज़ार में मैं रहती हूँ वह फारस रोड कहलाता है। फारस रोड, ग्राण्ट रोड और मदनपुरा के बीच में है। ग्राण्ट रोड के उस पार लेमिंग्टन रोड ऑपेरा हाउस और चौपाटी, मेरीन ड्राइव और फोर्ट के इलाके हैं जहाँ बम्बई के शरीफ लोग रहते हैं। मदनपुरा में, इस तरफ, गरीबों की बस्ती है। फारस रोड इन दोनों के बीच में है ताकि अमीर और गरीब दोनों बराबर फायदा उठा सकें—गो फारस रोड फिर भी मदनपुरा के ज्यादा करीब है—क्योंकि गरीबी में और वेश्या की स्थिति में हमेशा बहुत कम फासला रहता है।

यह बाज़ार बहुत खूबसूरत नहीं है। इस बाजार में बसने वाले भी बहुत खूबसूरत नहीं हैं। इसके बीच ट्राम की गड़गड़ाहट दिन-रात जारी रहती है। दुनिया भर के आवारा कुत्ते और लौंडे और शोहदे और बेकार और पुराने पापी इसकी गलियों की शोभा हैं। लँगड़े-लूले तमाशबीन जिनका कोई ठिकाना नहीं होता, आतशक के सूज़ाक के मारे हुए काने-लुंजे कोकीनबाज और जेबकतरे इस बाजार में सीना तान कर चलते हैं। गलीज होटल, सीले हुए फुटपाथ पर मैले के ढेरों पर भिनभिनाती हुई लाखों

मक्खियाँ, लकड़ियों और कोयलों के खस्ताहालत गोदाम, पेशेवर दलाल, बासी हार और सिनेमा की तस्वीरों की गली-सड़ी किताबें बेचनेवाले, कोक-शास्त्र और नंगी तस्वीरों के दुकानदार, चीनी और इसलामी हज्जाम, और लँगोटे कस कर गालियाँ बकनेवाले पहलवान—हमारी समाजी ज़िन्दगी का सारा कूड़ाकरकट आपको फ़ारस रोड पर मिलता है।—जाहिर है, आप यहाँ क्यों आएँगे। कोई शरीफ़ आदमी इधर को रुख नहीं करता। शरीफ़ आदमी जितने हैं, वह सब ग्राण्ट रोड के उस पार रहते हैं; और जो बहुत ही शरीफ़ हैं वह मलाबार हिल पर कयाम करते हैं।

मैं एक बार जिन्ना साहब की कोठी के सामने से गुज़री थी। और वहाँ मैंने झुक कर सलाम भी किया था। बुतूल का आप पर (जिन्ना साहब) जिस क़दर अक़ीदा है उसको मैं ठीक तरह से बयान नहीं कर सकूँगी। खुदा और रसूल के बाद दुनिया में अगर वह किसी को चाहती है तो वह सिर्फ़ आप हैं। उसने आपकी तस्वीर अपने लाकेट में लगाकर सीने से लगा रखी है। किसी बुरी नीयत से नहीं,....बुतूल की उम्र अभी ग्यारह बरस की है। छोटी-सी लड़की ही तो है वह गो फ़ारसरोडवाले अभी से उसके बारे में बुरे-बुरे इरादे कर रहे हैं। मगर खैर, वह फिर कभी आपको बताऊँगी।

तो यह है फ़ारसरोड जहाँ मैं रहती हूँ। फ़ारसरोड के पश्चिमी सिरे पर जहाँ चीनी हज्जाम की दुकान है, उसके पास ही एक अँधेरी गली के मोड़ पर मेरी दुकान है। लोग तो उसे दुकान नहीं कहते; मगर खैर, आप समझदार हैं। आपसे क्या छिपाऊँगी। यही कहूँगी, वहाँ पर मेरी दुकान है और वहाँ पर मैं उसी तरह व्यापार करती हूँ जिस तरह बनिया, सब्जीवाला, फलवाला, होटलवाला, आटेवाला, सिनेमावाला, कपड़ेवाला—या कोई और दुकानदार व्यापार करता है और हर व्यापार में गाहक को खुश करने के अलावा अपने फायदे की भी सोचता है। मेरा व्यापार भी

उसी तरह का है फर्क सिर्फ इतना है कि मैं ब्लैकमार्केट नहीं करती। मुझमें और दूसरे व्यापारियों में और कोई फर्क नहीं है।

दुकान की यह जगह अच्छी नहीं है—रात तो रात, यहाँ दिन में भी लोग ठोकर खा जाते हैं। इस अँधेरी गली में लोग अपनी जेबें खाली करके जाते हैं, शराब पीकर कै करते हैं, दुनिया-भर की गालियाँ बकते हैं। यहाँ बात-बात पर छुराज़नी होती है और दो एक खून दूसरे-तीसरे रोज होते रहते हैं—मतलब यह कि हर घड़ी जान साँसत में रहती है। फिर मैं कोई अच्छी वेश्या भी नहीं हूँ कि पवन पुल पर या वरली पर समुन्दर के किनारे एक कोठी ले सकूँ। मैं एक बहुत मामूली दर्जे की वेश्या हूँ और गो मैंने सारा हिन्दोस्तान देखा है और घाट-घाट का पानी पिया है, और हर तरह के लोगों की सोहबत में बैठी हूँ, लेकिन अब इस साल से इसी शहर बम्बई में, इसी फारसरोड पर, इसी दुकान में बैठी हूँ। और अब तो मुझे इस दुकान की पगड़ी भी छ हजार रुपये तक मिलती है हालाँकि यह जगह कुछ इतनी अच्छी नहीं—फ़ज़ा यहाँ की खराब है, कीचड़ चारों तरफ फैली हुई है, गन्दगी के अम्बार लगे हैं और खुजली-लगे कुत्ते घबराये हुए गाहकों की तरफ काट खाने को लपकते हैं—फिर भी मुझे इस जगह की पगड़ी छ हजार रुपये तक मिलती है!

इस जगह मेरी दुकान एक-मंज़िला मकान में है। इसमें दो कमरे हैं। सामने का कमरा मेरी बैठक है। यहाँ मैं गाती हूँ, नाचती हूँ, गाहकों को रिझाती हूँ। पीछे का कमरा रोटी पकाने, नहाने धोने और सोने के कमरे का काम देता है। यहाँ एक तरफ नल है, एक तरफ रेडियो है और एक तरफ बड़ा-सा पलंग है और इसके नीचे मेरे कपड़ों के सन्दूक हैं। बाहर वाले कमरे में बिजली की रोशनी है, लेकिन अन्दर वाले कमरे में बिल्कुल अँधेरा है। मालिक मकान ने बरसों से सफेदी नहीं करायी, न वह करायेगा। उसको फुरसत किसे है। मैं तो रात-भर नाचती हूँ और दिन को वहीं, गाव तकिए से सिर टेक कर सो जाती हूँ।

बेला और बुतूल को पीछे का कमरा दे रखा है। अकसर गाहक उस तरफ जब मुँह-हाथ धोने के लिए जाते हैं तो बेला और बुतूल फटी-फटी निगाहों से उन्हें देखने लग जाती हैं। जो कुछ उनकी निगाहें कहती हैं, मेरा यह खत भी कहता है। अगर वे इस वक्त मेरे पास न होतीं तो वह गुनाहगार लौंडी आपकी खिदमत में यह गुस्ताखी ही न करती। जानती हूँ, दुनिया मुझ पर थू-थू करेगी, जानती हूँ शायद आप तक मेरा यह खत भी न पहुँचेगा, फिर भी मजबूर हूँ। यह खत लिख कर ही रहूँगी—बेला और बुतूल की यही मर्जी है।

शायद आप सोचते हों कि बेला और बुतूल मेरी लड़कियाँ हैं। नहीं, यह गलत है। मेरी कोई लड़की नहीं है। इन दोनों लड़कियों को मैंने बाज़ार से खरीदा है। जिन दिनों हिन्दू-मुस्लिम फ़साद ज़ोरों पर था और ग्राण्ट रोड और फारसरोड और मदनपुरा में इन्सानी खून पानी की तरह बहाया जा रहा था, उन दिनों मैंने बेला को एक दलाल से तीन सौ रुपयों में खरीदा था। यह मुसलमान दलाल इस लड़की को दिल्ली से लाया था जहाँ उसे एक और मुसलमान दलाल रावलपिंडी से लाया था। बेला के माँ-बाप वहीं रहते थे।

बेला के मा-बाप रावलपिंडी में राजा बाज़ार के पीछे पूंछ हाउस के सामनेवाली गली में रहते थे। मध्य वर्ग का घराना था। भलमनसाहत और सादगी घुट्टी में पड़ी थी। बेला अपने मा-बाप की इकलौती लड़की थी। जब रावलपिंडी में मुसलमानों ने हिन्दुओं को तलवार के घाट उतारना शुरू किया, उस वक्त वह चौथी क्लास में पढ़ती थी।

बारह जुलाई की बात है। बेला अपने स्कूल से पढ़कर घर आ रही थी। उसने अपने घर के सामने और दूसरे हिन्दू घरों के सामने बहुत से लोगों का मजमा देखा। सब हथियारों से लैस थे और घरों को आग लगा रहे थे और लोगों को, उनके बच्चों को, उनकी औरतों को घर से

बाहर निकाल कर उन्हें कत्ल कर रहे थे। साथ-साथ अल्लाहो अकबर का नारा भी बुलन्द करते जाते थे।

बेला ने अपनी आँखों से अपने बाप को कत्ल होते हुए देखा। फिर उसने अपनी आँखों से अपनी मा को दम तोड़ते हुए देखा। वहशी मुसलमानों ने उसके पिस्तान काट कर फेंक दिये थे, वे पिस्तान जिनसे एक मा, कोई मा—हिन्दू या मुसलमान मा, ईसाई मा, यहूदी मा—अपने बच्चे को दूध पिलाती है और इन्सानों की जिन्दगी में और समस्त विश्व में सृष्टि का एक नया परिच्छेद खोलती है। वह दूध भरे पिस्तान अल्लाहो-अकबर के नारों के साथ काट डाले गये। किस ने सृष्टि के साथ इतना अत्याचार किया था, किस ज़ालिम अँधेरे ने इनकी रूहों में वह स्याही भर दी थी! मैंने कुरआन पढ़ा है और मैं जानती हूँ कि रावलपिंडी में बेला के मा-बाप के साथ जो कुछ हुआ वह इसलाम नहीं था, वह इन्सानियत न थी, वह दुश्मनी भी न थी, वह बदला भी न था—वह एक ऐसी बर्बरता, बेरहमी, बुजदिली और शैतानियत थी जो अँधेरे के सीने से फूटती है और नूर की आखिरी किरन को भी दाग़-दार बना देती है।

बेला अब मेरे पास है। मुझसे पहले वह दाढ़ीवाले मुसलमान दल्लाल के पास थी और इससे पहले वह दिल्लीवाले मुसलमान दलाल के पास थी। बेला की उम्र बारह साल से ज्यादा नहीं थी जब वह चौथी में पढ़ती थी। अपने घर पर होती तो आज वह पाँचवीं जमात में पढ़ रही होती। फिर बड़ी होती तो उसके मा-बाप उसका ब्याह किसी शरीफ घराने के गरीब से लड़के से कर देते। वह अपना छोटा-सा घर बसाती—अपने पति से, अपने नन्हें-नन्हें बच्चों से, अपनी बेरंग ज़िन्दगी की छोटी-छोटी खुशियों से। लेकिन इस नाज़ुक कली को बेवक्त पतझड़ ने घेर लिया।

अब बेला अपनी उम्र की नहीं मालूम होती। उसकी उम्र थोड़ी है, लेकिन उसकी ज़िन्दगी बहुत बड़ी है। उसकी आँखों में जो डर है, इन्सा-

नियत की जो कड़ुवाहट है, नाउम्मीदी का जो लहू है, मौत की जो प्यास है—कायदेश्राज़म साहब, अगर आप उसको देख सकें तो शायद अन्दाजा कर सकें, उन बेआसरा आँखों की गहराइयों में उतर सकें। आप तो शरीफ आदमी हैं। आपने शरीफ घराने की मासूम लड़कियों को देखा होगा— हिन्दू लड़कियों को, मुसलमान लड़कियों को। शायद आप समझ जाते कि मासूमियत का कोई मज़हब नहीं होता। वह सारी इन्सानियत की अमानत है। सारी दुनिया की मीरास है। जो उसे मिटाता है, उसे दुनिया के किसी मज़हब का खुदा माफ नहीं कर सकता।

बुतूल और बेला दोनों सगी बहनों की तरह मेरे यहाँ रहती हैं। बुतूल और बेला सगी बहनें नहीं हैं। बुतूल मुसलमान लड़की है, बेला ने हिन्दू घराने में जन्म लिया है। आज दोनों फारस रोड पर एक रण्डी के घर बैठी हुई हैं। अगर बेला रावलपिंडी से आई है तो बुतूल जालंधर के एक गाँव खेमकरन के एक पठान की बेटी है। बुतूल के बाप के सात बेटियाँ थीं। तीन शादीशुदा और चार कुँवारियाँ। बुतूल का बाप खेमकरन में एक मामूली काश्तकार था। गरीब पठान, लेकिन गर्वीला पठान जो सदियों से खेमकरन में आकर बस गया था।

जाटों के इस गाँव में यही तीन-चार घर पठानों के थे। यह लोग जिस तरह दब कर रहते थे, शायद इसका अन्दाज़ा पंडित जी आपको इस बात से होगा कि मुसलमान होने पर भी इन लोगों को गाँव में मसजिद बनाने की इजाज़त नहीं थी। ये लोग घर में चुपचाप अपनी नमाज़ अदा करते—सदियों से, जब से महाराज रणजीतसिंह ने हुकूमत की बागडोर संभाली थी, किसी मोमिन ने इस गाँव में अज़ान नहीं दी थी। इनका दिल धार्मिक भक्ति से जगमग था, लेकिन दुनिया की मजबूरियाँ इस हद तक थीं और फिर आपसदारी का खयाल इस हद तक उन पर छाया था कि उसे होठों तक लाने की हिम्मत नहीं होती थी।

बुनूल अपने बाप की चहेती लड़की थी, सातों में सब से छोटी, सब से प्यारी, सबसे खूबसूरत। बुनूल इस कदर हसीन है कि हाथ लगाने से मैली होती है। पंडितजी, आपतो खुद काश्मीरी हैं और कलावन्त होने के नाते यह भी जानते हैं कि खूबसूरती किसे कहते हैं। यह खूबसूरती आज मेरी गंदगी के ढेर में इस तरह गडमड होकर पड़ी है कि इसकी परख करनेवाला कोई शरीफ आदमी अब मुश्किल से मिलेगा। इस गंदगी में गले-सड़े मारवाड़ी, घनी मूछों वाले ठेकेदार, नापाक निगाहों वाले चोर बाजारी ही नजर आते हैं। बुनूल बिल्कुल अनपढ़ है। उसने सिर्फ जिन्ना का नाम सुना था। पाकिस्तान को एक अच्छा तमाशा समझ कर उसके नारे लगाये थे—जैसे तीन-चार बरस के नन्हें बच्चे घरों में 'इन-कलाब जिन्दाबाद' करते फिरते। ग्यारह ही बरस की तो है वह!

अनपढ़ बुनूल—चन्द दिन ही हुए वह मेरे पास आई है। एक हिन्दू दल्लाल उसे मेरे पास लाया था। मैंने उसे पाँच सौ रुपये में खरीद लिया। यह हिन्दू दलाल उसे लुधियाने से लाया था—एक जाट दलाल से। इससे पहले वह कहाँ थी, यह मैं नहीं कह सकती। हाँ, लेडी डाक्टर ने मुझ से बहुत कुछ कहा है। अगर आप उसे सुन लें तो शायद पागल हो जाएँ। बुनूल भी आधी पागल है। उसके बाप को जाटों ने इस बेदर्दी से मारा है कि हिन्दू तहज़ीब के पिछले छः हजार बरस के छिलके उतर गये हैं—और इन्सान की बर्बरता अपने वहशी नंगे रूप में सबके सामने आ गई है। पहले तो जाटों ने उसकी आँखें निकाल लीं, फिर उसके मुँह में पेशाब किया, फिर उसके गले को चीर कर उसकी आँतें तक निकाल लीं, फिर उसकी सयानी बेटियों से जबर्दस्ती मुँह काला किया—उसी वक्त, उसकी बाप की लाश के सामने। रैहाना, गुल, दुरख्शां, मरजाना, सोसन, बेगम—एक एक करके वहशी इन्सान ने अपने मन्दिर की मूर्तियों को नापाक किया। जिसने उन्हें जिन्दगी अता की, जिसने उन्हें लोरियाँ सुनाई थीं, जिसने उनके सामने शर्म से आजिजी और पाकीज़गी से सिर झुकाया था—उन

तमाम बहनों, बहुओं, माओं के साथ ज़िना किया। हिन्दू धर्म ने अपनी इज्ज़त खो दी थी, अपनी खादारी तबाह कर दी थी, अपनी अ़ज्मत मिट्टी में मिला डाली थी। आज ऋग्वेद का हर मंत्र खामोश था, आज ग्रंथ साहब का हर दोहा शर्मिन्दा था, आज गीता का हर श्लोक ज़ख्मी था। कौन है जो मेरे सामने अजन्ता की चित्र-कला का नाम ले सकता है, अशोक के अभिलेख सुना सकता है, एलोरा के मन्दिरों के गुन गा सकता है। बुतूल के बेबस भिंचे हुए होठों, उसकी बाँहों पर वहशी दरिन्दों के दाँतों के निशान और उसकी फिरी हुई टाँगों की नाहमवारी में तुम्हारी अजन्ता की मौत है, तुम्हारे एलोरा का जनाज़ा है, तुम्हारी तहज़ीब का कफ़न है। आओ, आओ, तुम्हें मैं वह खूबसूरती दिखाऊँ जो कभी बुतूल थी, कफ़न में लिपटी उस लाश को दिखाऊँ जो आज बुतूल है !

आवेश में बह कर मैं बहुत कुछ कह गई। शायद यह सब कुछ मुझे न कहना चाहिए था, शायद इसमें आपकी सुबकी है; शायद इससे ज्यादा नागवार बातें आपसे और किसी ने न कहीं होंगी, न सुनाई होंगी; शायद आप यह सब कुछ महसूस करते होंगे, लेकिन कर कुछ नहीं सकते—जैसा कि मैं देख रही हूँ। आपलोग—पंडितजी, जिन्ना साहब—बहुत कुछ नहीं कर सकते। बल्कि शायद थोड़ा-बहुत भी नहीं कर सकते। फिर भी हमारे मुल्क में आज़ादी आ गई है—हिन्दोस्तान और पाकिस्तान में—और शायद एक वेश्या को भी अपने रहनुमाओं से यह पूछने का हक़ ज़रूर है कि अब बेला और बुतूल का क्या होगा !

बेला और बुतूल दो लड़कियाँ हैं, दो कौमें हैं, दो तहज़ीबें हैं, दो मन्दिर और मसजिद हैं। बेला और बुतूल आजकल फ़ारसरोड पर एक रण्डी के यहाँ रहती हैं जो चीना हज्जाम की बगल में अपनी दुकान का धंधा चलाती है। बेला और बुतूल को यह धंधा पसन्द नहीं। मैंने उन्हें खरीदा है। मैं चाहूँ तो उनसे यह काम ले सकती हूँ। लेकिन मैं सोचती हूँ, मैं वह काम नहीं करूँगी जो रावलपिंडी और जालंधर ने इनके साथ

किया है। मैंने अब तक उन्हें फ़ारसरोड की दुनिया से अलग-थलग रखा है। फिर भी मेरे ग्राहक जब पिछले कमरे में जाकर अपना मुँह-हाथ धोने लगते हैं, उस वक्त बेला और बुतूल की निगाहें मुझ से कुछ कहने लगती हैं।

मैं इन निगाहों की ताब नहीं ला सकती। मैं ठीक तरह से उनका संदेशा आप तक नहीं पहुँचा सकती। आप खुद क्यों न इन निगाहों का मतलब पढ़ लें। पंडितजी, मैं चाहती हूँ कि आप बेला को अपनी बेटी बना लें। जिन्ना साहब, मैं चाहती हूँ कि आप बुतूल को अपनी दुख़्तरे नेक अख़्तर समझें। ज़रा एक दफ़ा इन्हें फ़ारसरोड के चंगुल से छुड़ा कर अपने घर में रखिए और उन लाखों रूहों की आवाज़ सुनिए जो नोआखाली से रावलपिंडी तक और भरतपुर से बंबई तक गूँज रही हैं। क्या सिर्फ़ गवर्नमेंट हाउस में इसकी आवाज़ सुनाई नहीं देती?—यह आवाज़ सुनेंगे आप!

आपकी,

फ़ारसरोड की एक वेश्या

जैक्सन

रात जवान थी और बर्फ की तरह सर्द और सख्त। सड़क भी सख्त थी और जैक्सन के भारी बूटों की चाप भी सख्त थी; और सड़क के दोनों ओर के पेड़ भी पुलिस के सन्तरियों की तरह अकड़े हुए खड़े नजर आ रहे थे। इसी रात में, इसी आसमान के तले, इसी सड़क के आरपार हर चीज सख्त, प्रकट, प्रत्यक्ष और अपनी जगह पर अटल थी। मिसाल के तौर पर जैक्सन को मालूम था कि वह शहर लाहौर का डिप्टी सुपरिन्टेण्डेन्ट पुलिस है और जिस सड़क पर वह चल रहा है वह एम्प्रेस रोड कहलाती है। वह क्लब से छ पेग पीकर छड़ी घुमाता हुआ अपने बँगले को जा रहा है। पुलिस के चार सिपाही-उसके पीछे चल रहे हैं जिससे उसपर कोई हमला न कर सके। खुद उसकी जेब में एक भरा हुआ पिस्तौल है। उसने इस मुल्क में बीस साल नौकरी की है और अब पन्द्रह अगस्त १९४७ में सिर्फ चार रोज बाकी रह गये हैं; जब यह मुल्क आजाद हो जायगा और जैक्सन की बादशाहत उससे छिन जाएगी।

जैक्सन हालाँकि ऐंग्लो इण्डियन था, फिर भी वह अपने को सिर्फ अँग्रेज ही समझता था। इसीलिए बादशाहत छिन जाने का उसे बेहद रञ्ज

खड़े हुए सन्तरियों ने उसे सलामी दी और फिर थोड़ी देर बाद, उसके पीछे चलते हुए सिपाही उसके बँगले के दरवाजे तक आए और सलामी देकर वापिस हो गये।

इस वक्त तक जैक्सन अन्दर जा चुका था, लेकिन सलामी सिपाहियों के लिए फिर भी जरूरी थी।

× × ×

जैक्सन अन्दर पहुँचा तो बैरे ने धीरे से कहा—'वह आ गए हैं, हुजूर!'

'कहाँ बैठाया है उन्हें?'

बैरे ने इशारे से कहा—'महाशय निहालचन्द खोसरी तो सरकार के दफ्तर में बैठे हैं। मौलाना अल्लाहदाद पीरजादा को ड्राइंगरूम में बैठा दिया है सरकार। पहले किसे खबर करूँ?'

जैक्सन ने कहा—'तुम पीरजादा साहब को पेग-वेग दो। मैं महाशय से बात करता हूँ।'

महाशय निहालचन्द खोसरी हिन्दुओं के माने हुए लीडर थे। गरीब हिन्दुओं का भला चाहते थे। तीन अखबारों, चार कोठियों और गुजरांवाला में दस हजार एकड़ जमीन के मालिक थे। उनका बड़ा बेटा इन्टरनेशनल बैंक का मैनेजर था, छोटा कांग्रेसी एम० एल० ए०। उनका दामाद हिन्दू महासभा का मन्त्री था और वह खुद बेदाग सोशलिस्ट थे—यानी उन्होंने अपने फायदे के लिए, भविष्य पर निगाह रखते हुए, चारों खूंटों पर कब्जा कर रखा था और कौन सी करवट का खयाल रखा था।

अब मुश्किल यह आ पड़ी कि इन दिनों हिन्दू-मुसलिम फसाद जोरों पर था और उनका कोई विश्वासी मुसलमान न था। न वह खुद किसी [illegible] से मुसलमान से मिलते थे और [illegible] [illegible]। अब उनके स्वभाव में भी न आती थी कि [illegible] [illegible] पर बट

जाएगा और उनका खूबसूरत लाहौर हिन्दोस्तान से निकल कर पाकिस्तान की सीमा में चला जाएगा। वरना वह पहले से इन्तजाम करते। और कुछ न होता तो ख्वाजा हसन निजामी के मुरीद हो जाते या अजमेर शरीफ जा कर आधे मुसलमान हो जाते। अब फसाद के शोले भड़क उठे थे। आगजनी, बमबारी, कत्ल और लूट मार का बाजार गर्म था और बचाव की कोई सूरत न थी। जैक्सन से उनकी पुरानी मुलाकात थी और वह उसी से सलाह करने के लिए चले आये थे।

'वेल, महाशय साहब!'

'मेरा खत आपको मिल गया था?' निहालचन्द बोले।

'हाँ।'

'तो अब बताइये, क्या किया जाए। हिन्दुओं की जानें सख्त खतरे में हैं। शाह आलमी दरवाजा तो जल चुका है। सुबरन के मोहल्ले के हिन्दू खत्म हो चुके हैं। कृष्ण नगर, सन्त नगर, आर्य नगर के हिन्दू भी अगर लाहौर से बचाकर नहीं निकाले गये तो एक हफ्ते के अन्दर खत्म हो जाएँगे। डी० ए० वी० कालेज में राशन दो दिन का बाकी रह गया है। वहाँ तीस हज़ार हिन्दू शरण लिये हुए हैं।'

'हिन्दुस्तान की हुकूमत क्या कर रही है?' जैक्सन ने पूछा।

'उन्होंने हवाई जहाज से एक रोज रोटियाँ डी० ए० वी० कालेज में फेंकी थीं। रोटियों के साथ में पर्चा भी था कि हमलोग आपको निकालने का बहुत जल्द इन्तजाम कर रहे हैं। मगर साहब, अभी तो हालत बहुत बुरी है। सुना है, पन्द्रह सौ मिलिट्री लारियों की जरूरत है और अभी सिर्फ ढाई सौ लारियों का बन्दोबस्त हुआ है। हम लोग तो इन्तजार करते-करते मर जाएँगे।'

जैक्सन ने मुस्करा कर कहा—'हकूमत सो रही है। कलकत्ता के डिपो में हजारों लारियाँ पड़ी हैं। खुद दिल्ली में, फीरोजपुर, लुधियाना, किसी

एक शहर की लारियों को सरकार अपने हाथ में कर ले। पन्द्रह सौ लारियों का बन्दोबस्त हो सकता है। लेकिन वह लोग कुछ नहीं करेंगे।'

'तो फिर हम कहाँ जाएँ। यहाँ भी जहन्नुम है। परमात्मा के लिए, जैक्सन साहब, इस वक्त हमारी मदद कीजिए। अगर हम सबकी मदद आप न कर सकते हों तो मेरे खान्दान को तो यहाँ से निकलवा दीजिए। मैं हूँ, मेरी बीबी है, दो लड़के हैं, एक दामाद है, मेरी लड़की है और हमारा कुत्ता है। हमलोग हवाई जहाज से चले जाएँगे, या मिलिट्री ट्रक से। बाकी लोगों को आप रेल गाड़ी से या पैदल जत्थे या किसी सूरत से भेज दीजिये। मगर हमें पहले रवाना कर दीजिए।'

जैक्सन ने एकाएक पूछा—'आप कितने रुपये खर्च कर सकते हैं?'

'दस-पन्द्रह-बीस हज़ार। इस वक्त रुपये का क्या सवाल है।'

जैक्सन ने सोचकर बड़ी देर में कहा—'आप इस वक्त बीस हज़ार रुपया मेरे पास छोड़ जाइये। मैं मुस्लिम खिदमतगारों के सालार से, जो मेरा परिचित है, बात करता हूं। मुमकिन है, कोई सूरत निकल आये। मगर आप से एक बात पूछता हूं। आप भागते क्यों हैं, जमकर मुकाबला क्यों नहीं करते हमलावर मुसलमानों का?'

'क्या कह रहे हैं आप? मुकाबला क्या खाली हाथों से हो सकता है साहब! वहाँ तो मशीनगनें हैं उनके पास, और रायफलें और छुरे!'

जैक्सन ने अपनी कुर्सी नित्यानन्द के पास खिसका ली और बोला—'अगर आपको भी वह सामान मिल जाए तो.....[illegible]!'

उसने चक्रवर्ती को सिगार पेश करते हुए कुर्सी और करीब खिसका ली।

चक्रवर्ती का चेहरा तमतमा उठा—'क्या कह रहे हैं आप?'

जैक्सन ने कहा—'[illegible]। [illegible] मदद करेंगे। [illegible] हिन्दुओं का [illegible]। [illegible] हिन्दुओं से [illegible]। [illegible], [illegible], [illegible]

कालेज, इसके सिनेमाघर, इसकी सारी रौनक हिन्दुओं के दम से है। वही लाहौर के मालिक हैं। उन्हीं को इसमें रखना चाहिये। मर्दों की तरह से लड़िये, महाशयजी, हम आपकी मदद करेंगे। आपके असर में कितने आदमी हैं?'

महाशयजी ने पेग उठाते हुए कहा—'लाहौर के हिन्दू सिर्फ एक लीडर पर भरोसा रखते हैं और वह है महाशय निहालचन्द खोखरी।'

'जिन्दाबाद!' जैक्सन ने कहा। फिर उसने घन्टी बजाई और बैरे के कान में कुछ कहा। थोड़ी देर के बाद बैरा वापिस आया और साहब के कान में कुछ कह कर चला गया।

जैक्सन ने कहा—'अभी आप यहाँ बैठिये। एक-आध घंटे में सब इन्तजाम हुआ जाता है। मैंने टेलीफोन कर दिया है। अभी हथियारों से भरी हुई एक मिलिटरी लारी आपके साथ भेजता हूँ और एक आदमी भी जो आपके आदमियों को सब दिखा देगा। क्यों ठीक है न?'

महाशयजी हाथ बाँधकर खड़े हो गए—'ईश्वर आपका भला करेगा, जैक्सन साहब!'

जैक्सन ने उठते हुए कहा—'मुझे अभी एक और साहब से मिलना है। आप यहाँ बैठिये। एक पेग और पीजिये। आज सर्दी बहुत ज्यादह है। और हाँ, हथियारों की कीमत लारीवाला ड्राइवर आपसे वसूल कर लेगा!'

'शुक्रिया', महाशय निहालचन्द चहके—'मगर एक बात है। वह यह है कि आप मेरे खान्दान का अमृतसर जाने का बन्दोबस्त जरूर कर दीजिए। मैं बाकी यहाँ सब बन्दोबस्त करके ही जाऊँगा।'

'बहुत अच्छा।'

× × ×

ड्राइंगरूम में मौलाना पीरजादा बैठे थे और बिना झिझक शराब पी रहे थे।

'कहिये मौलाना, मजे में हैं?'

'छोड़िये न जेक्सन साहब यह बातें। मजे तो पुलिसवालों के हैं। सुना है, आज-कल लाहौर के हर पुलिस ने इतना सोना लूट लिया है कि अब सात पुश्तों के लिए काफी होगा उसके लिए। जब सन्तरियों का यह हाल है तो आपका बँगला तो सोने की ईंटों का होना चाहिये।'

'बड़े मुअर हो, मौलाना!' जेक्सन ने उनकी पीठ थपकते हुए कहा।

'तभी तो सी० आई० डी० का काम करता हूँ हुजूर!'

'तो बोलो क्या बात है?'

'सुनिये, माडल टाउन में सबसे ज्यादा अमीर हिन्दू और सिख लोग रहते हैं। दो-तीन बार हमला करने की कोशिश की गई, मगर वहाँ डोगरा सिपाहियों ने एक न चलने दी। फिर उन लोगों के पास पिस्तौल भी हैं। अभी कुछ दिन हुए नक्कासुनार गेट के मुसलमानों का एक जत्था हमला करने की नीयत से गया था। चालीस आदमी मरे। हमारे पास हथियार कहाँ हैं। हिन्दुओं के पास न जाने कहाँ से बम, मशीनगनें, राइफल, पिस्तौल सब कुछ आ जाते हैं। बेचारे मुसलमानों को लाठी छुरे और चाकुओं से लड़ना पड़ता है।'

'तो मैं हथियार कहाँ से दिलाऊँ। तुम भी कैसी बातें करते हो। [illegible] यार, हथियार [illegible] के बगैर नहीं मिल सकते। मेरे पास होते तो मैं दे न देता। मुझे तो हिन्दुस्तान में नहीं, पाकिस्तान में रहना है। हिन्दू [illegible] में मुझे कोई दिलचस्पी नहीं है। और इसलाम हमारे ईसाई मजहब से मिलता जुलता है। ईसाई मुसलमान के साथ मिल सकता है, लेकिन हिन्दू के साथ [illegible] नहीं हो सकता।'

'[illegible],' [illegible] हुए कहा।

'कहाँ से?'

'एक मुसलमान जमींदार को फाँसा है, दीन के नाम पर और कुफ्र के खिलाफ़ जेहाद करने के लिए। पचास हजार रुपया लाया हूँ, आप जल्दी से जल्दी हथियारों का इन्तजाम कर दीजिये। हमलोग माडल टाउन को लूटना चाहते हैं।'

जैक्सन ने घण्टी बजाई। बैरा हाजिर हुआ और जैक्सन साहब ने उसके कान में कुछ कहा और वापिस चला गया। कुछ मिनट के बाद आया तो उसने फिर जैक्सन साहब के कान में कुछ कहा और फिर वापिस चला गया।

जैक्सन ने पचास हजार के नोट लेकर कहा—'मुझे इनकी जरूरत नहीं। तुम ड्राइवर को दे देना। मैंने एक लारी भरकर हथियार मँगवाए हैं। अभी आध घण्टे में लारी आ जाएगी। उसे लेकर चले जाओ और देखो, आगे मुझे परेशान न करना। और हाँ, सुन लो, मैंने यह हथियार बड़ी मुश्किल से मँगवाए हैं और जो दाम वह माँगते थे, उससे कहीं कम कीमत पर। मैंने कहा, गरीब मुसलमान हैं। इतने पैसे कहाँ से देंगे। यह तुम्हें मुफ्त में पड़ रहे हैं। ले जाओ इन्हें और मेरा पीछा छोड़ो। तुम मुसलमानों के लिए मैंने इतना कुछ किया है और तुमसे इतना भी नहीं हो सका कि मुझे पुलिस सुपरिन्टेण्डेण्ट ही बना दो। अहसान फरामोश कहीं के!'

पीरजादा ने दूसरा पेग पीते हुए कहा—'बड़ी अच्छी शराब है। कहाँ से मँगाई है।'

'पुरानी फ्रान्सीसी शराब है। एक हिन्दू राजा ने भेजी है। उसकी रानी को लाहौर से सही सलामत दिल्ली पहुँचवा दिया था।'

'रानी खूबसूरत होगी', पीरजादा ने होंठ चाटते हुए कहा—'पुरानी फ्रान्सीसी शराब की तरह।'

'डैमस्वाइन!' जैक्सन ने हँसते हुए कहा—'और तुम क्या कहोगे। सुना है कि आजकल हर रोज एक नयी हिन्दू कुँवारी......'

'आदाब देता हूँ', पीरज़ादा मुस्कराकर पेग अपनी आँखों के सामने लाया! बिजली की रोशनी में शराब पिघले हुए सोने की तरह चमकने लगी।

× × ×

जब दोनों लारियाँ, एक के बाद दूसरी, बीस मिनट के अन्तर से, दो भिन्न दिशाओं में रवाना हो गईं तो जैक्सन अपने बूट खोले बगैर ड्राइंग रूम के दीवान पर लेट गया और चुरुट के धुएँ में अपने भविष्य की तस्वीर उतारने लगा। उसकी बीवी अधेड़ उम्र की हो गई थी, वह उसे विलायत नहीं ले जाएगा, बल्कि उसे यहीं तलाक़ और एक मुनासिब रकम देकर उससे पीछा छुड़ा लेगा, क्योंकि उसकी बीवी का रंग उसकी बेटियों की तरह गुम हुआ नहीं था, बल्कि उनमें हिन्दियत की झलक जाहिर थी। इसलिए जैक्सन कभी अपनी बीवी को योरपियन लोगों की ऊँची पार्टियों में नहीं ले जाता था। हाँ अपनी बेटियों से उसे बहुत मोहब्बत थी। वह अपनी बेटियों को विलायत ले जाएगा और वहाँ सौ फ़ीसदी खालिस अंग्रेजों से उनकी शादी करेगा। अब उसके पास इतना रुपया हो गया था कि वह इस रुपये से आला खानदान के शरीफ़ लेकिन गरीब अंग्रेज लड़कों को खरीद सकता था। वह खुद भी एक शादी करेगा, परी की तरह सुंदर किसी अंग्रेज खातून से जिसका अपना महल होगा और फिर हाथ में जिसके चार [illegible] की [illegible] [illegible] होंगी और उसके माथे पर मोतियों का [illegible] होगा, पुराना खानदानी रोमन नाम, और [illegible] [illegible] [illegible]

जैक्सन ने दूसरा पेग उँडेला और चिट्ठी खोलकर फिर दीवान पर पाँव पसारकर लेट गया और इत्मीनान से अपनी चहेती बेटी का खत पढ़ने लगा—

'प्यारे से प्यारे डार्लिङ्ग पपा,

यह तुम्हारी प्यारी बेटी रोजी का खत है जो वह तुम्हें बर्ट से लिख रही है। आज यहाँ नाच की प्रतियोगिता है न। लेकिन सिंथिया जल्द घर लौट रही है और मैं यहाँ ठहर रही हूँ, क्योंकि तुम्हें मालूम है कि मैं अव्वल नम्बर पर आऊँगी। इसलिए इस इनाम को भी क्यों छोड़ूँ। लेकिन इस वक्त यह खत तुम्हें, प्यारे पपा, इस मतलब के लिए नहीं लिख रही। इस वक्त मेरे सामने सुसज्जित जोड़े राजहंसों की तरह नाचघर के फर्श पर तैरते हुए घेरे में गुजरते जा रहे हैं और सुंदर फानूसों की रोशनी है और आर्केस्टरा के संगीत की बौछार है और खूबसूरत सुनहली आभा-सी वातावरण में छा गई है—जैसे सूरज और चाँद एक साथ हमारे विला में उतर आए हों।

मैंने थोड़ी सी शैरी पी ली है। इसलिए यह शायरी कर रही हूँ। मगर मैं तुम्हें यह खत शैरी, शायरी या नाच के लिए नहीं लिख रही हूँ, यह खत तुम्हें अपने साथी के बारे में लिख रही हूँ जो इस वक्त मेरे सामने कुर्सी पर बैठा है और मेरी तरफ देख-देखकर मुस्करा रहा है। इसका नाम आनन्द है। हाँ, यह हिन्दुस्तानी है और इसे मैं पिछले दो बरस से जानती हूँ। तुम चौंक पड़ोगे पपा और शायद नाराज भी होंगे, लेकि आनन्द ऐसा लड़का नहीं है जिसपर कोई नाराज हो सके। वह इतना अच्छा नाचता है कि बर्ट में कोई एंग्लो इण्डियन या अँग्रेज लड़का भी उसका मुकाबला नहीं कर सकता!

आनन्द का रंग साँवला है। तुम्हें मालूम है कि मुझे साँवले रंग से कितनी नफरत थी। इसीलिये तो जब आनन्द पहली बार मुझे बर्ट में मिला और उसने मुझसे जान-पहचान करनी चाही तो मैं बड़ी रुखाई से उसके साथ पेश आई। लेकिन दूसरे हिन्दोस्तानी लड़कों की तरह वह हतप्रभ नहीं हुआ। उसने बुरा भी नहीं माना, बल्कि सिर्फ मुस्करा दिया। तुम

स्काटलैंड याड का अफसर होता तो मैं भी अंग्रेजों के लिए शायद इसी तरह के शब्दों का प्रयोग करता। रहा व्यवस्था और संघटन का सवाल, तुम क्या नहीं जानतीं कि अब दो-एक सालों में. तुम लोग यहाँ से जानेवाले हो—हिंदोस्तान से। कांग्रेस और लीग का संघटन तो तुमने देखा है न ?'

'मुझे कुछ मालूम नहीं,' मैंने गुस्से में जलकर कहा—'पर तुम हिन्दुस्तानी होते हो सुअर की औलाद !'

यह कहकर मैं उसकी मेज पर से उठ गई। आनन्द मुसकराता रहा। जब मैं जा रही थी तो उसने कहा—'सुनो, मैं पाँच हजार बरस पुराना हूँ। बहुत दाँव जानता हूँ। एक दिन तुम्हें वश में करके छोड़ूँगा।'

मुझे उसका चैलेंज पसन्द नहीं आया। मगर शायद दिल के एक टुकड़े को पसन्द भी आया। क्योंकि इसके बाद अनजाने ही में मैं उसके साथ बराबर का बरताव करने लगी। बाहर से नहीं, दिल के अन्दर मैं उसे अपने बराबर का समझने लगी। जब कभी हमारी निगाहें एक दूसर से मिलतीं तो निगाहें पहले मुझी को हटानी पड़तीं और उसकी मुस्कराहट तो, पहले कह चुकी हूँ, बहुत ही खतरनाक है। दिल काटने लगता है, बदन सुन्न हो जाता है और गले में फंदा सा पड़ने लगता है।

फिर तीन-चार महीने बीत गये और मैं उसके साथ कभी नहीं नाची। इतने अर्से के बाद प्रतियोगिता का दिन आया। हार कर और कोई चारा न देख मुझे मर्द साथियों में उसे चुनना पड़ा। क्योंकि इसमें कोई शक नहीं कि उससे अच्छा नाचनेवाला साथी मुझे प्रतियोगिता के लिए कहीं नहीं मिल सकता था। हम दोनों ने इनाम हासिल किया, इनाम मिलने की खुशी में हम दोनों ने एक साथ शराब पी—एक ही जाम में से। वह मेरा चुम्बन भी ले सकता था, लेकिन उसने हँसकर टाल दिया और मुझे बड़ी राहत-सी हुई, क्योंकि जब वह मेरी तरफ देखकर मुसकराता है तो मुझे ऐसा मालूम होता है कि वह मुझे चूम रहा है, मुझे प्यार कर रहा है, मेरे चारों ओर हजारों बाँहें-सी लिपटी जा रही हैं—साँवली-साँवली सशक्त

बाँहें और मैं अपने को उनके घेरे से छुड़ा नहीं सकती और मैं डरकर मेज से उठ जाती हूँ !

वह नहीं समझता कि मैं उससे क्यों भाग रही हूँ और मैं नहीं समझती कि मैं उसके निकट क्यों आ रही हूँ। हम दोनों का वतन अलग है, मजहब अलग है, बोल-चाल, खाना-पीना, उठना-बैठना—हर चीज अलग है। फिर इस हद तक गहरे खिंचाव का तीव्र अहसास मुझे क्यों होता है—मेरी अक्सर रातें यही सोचते-सोचते आँखों में कट गई हैं। सब कुछ तुम्हें, प्यारे पपा, बहुत ही विस्तार में लिख रही हूँ जिससे तुम अपनी प्यारी रोजी के फैसले और उसके भविष्य की तस्वीर से परिचय, गहरा परिचय, हासिल कर सको।

अब मैंने उससे छिप-छिपकर मिलना शुरू कर दिया क्योंकि वर्ट में उसे लोग रोजी का इण्डियन पार्टनर कहने लगे थे और सिन्थिया इस बात को सख्त नापसन्द करती थी और अगर आनन्द के साथ बेतकल्लुफी से खुलकर मिलती-जुलती तो पपा इसमें तुम्हारी बदनामी भी होती और लोग कहते कि डिप्टी सुपरिन्टेन्डेन्ट जैक्सन की एक लड़की काले हिंदोस्तानी से इश्क लड़ा रही है। यह मैं कैसे बरदाश्त करती। इसलिए मैं उससे छिप-छिप के मिलती हूँ।

हम लोग अकसर मेट्रो में नाच के लिए जाया करते हैं। वहाँ सब हिन्दोस्तानी होते हैं और वहाँ आर्केस्टरा तो बहुत ही अच्छा है। वहाँ मुझे पहली बार हिन्दोस्तानी लड़कों से मिलने का मौका मिला। कलाकार, लेखक, राजनीतिज्ञ, सोशलिस्ट, कम्युनिस्ट, अकाली, खद्दरपोश—ये लोग जो हिन्दी फिल्मों की बातें करते थे, हिंदी किताबों की, हिंदी मजदूरों और किसानों की, मुल्क और कौम को आगे ले जाने की बातें, गम्भीर बातें, भयानक बातें, अंग्रेजी राज्य को उलट देने की बातें, सारी दुनिया में एक भाईचारे की व्यवस्था—एक नयी इन्सानियत को जन्म देने की बातें—ऐसी बातें जो मैंने वर्ट के नाच घर में कभी नहीं सुनी थीं, ऐसी बातें जो मैंने

घर या स्कूल में कहीं नहीं सुनी थीं, ऐसी बातें जिनसे मिलकर इस दुनिया का सुख-दुःख, रंज और खुशी बनती है, ऐसी बातें जिन्हें सुनकर कुछ करने को जी चाहता है, कुछ सोचने को जी चाहता है, कुछ आगे बढ़ने को जी चाहता है !

पपा, मुझे अब मालूम हुआ कि तुम और तुम्हारी दुनिया कितनी बुझी हुई है। मुझे इस दुनिया से प्यार है—तुम से, ममी से, सिन्थिया से, मगर तुम अब मिस्र के ममियों की तरह पुराने हो चुके हो—प्यारे मगर पुराने, उन रोमन बुतों की तरह जो अजायबघर में रखे हुए हैं।

इन दो सालों के अर्से में मैंने क्या किया है, मैं सब कुछ बता देना चाहती हूँ, क्योंकि यह सब कुछ मैंने तुमसे, ममी से और सिन्थिया से छिपाकर, सारी दुनिया की नजरों से छिपाकर किया है। मैंने इन दो सालों में हिन्दोस्तान से मोहब्बत करना सीखा है। मैंने उसकी बोली सीखी है। मैंने उसके कपड़े पहने हैं। मैंने उसके खाने खाये हैं। मैंने उसके गीतों को गाया है, उसके नाच-गानों में हिस्सा लिया है। मेरे बदन पर साड़ी इतनी अच्छी लगती है कि क्या कहूँ। दिल करता है उसे दिन-भर अपने जिस्म से लिपटाये रखूँ। मुझे कथाकली और भारत नाट्यम् के कभी न क्षीण होने वाले सौन्दर्य से प्रेम हो गया है। दो सौ साल से मेरी आत्मा में जो जंग लग गया था, अब वह उतर गया है।

पपा, मैं हिन्दोस्तानी लड़की हूँ। मेरी रगों में हिन्दोस्तान का खून है। तुम भी हिन्दोस्तानी हो, पपा। गौर से देखो तो मालूम होगा कि हमारे चेहरे बिल्कुल अंग्रेजों-जैसे नहीं हैं। इनमें पाँच हजार बरस पहले के चिह्न उभरते नजर आते हैं— तुम में, सिन्थिया में, ममी में। हम लोग हिन्दोस्तानी हैं, गौर से देखो।

मैंने इन दो सालों में हिन्दोस्तान को पास से देखा है। ये लोग उतने ही भले-बुरे हैं जितने हम लोग, पपा। और मुझे अब जलेबियाँ और इमर-तियाँ और मोतीचूर के लड्डू बहुत पसन्द हैं, और खोआ, और दालमोट

और शलवार-कमीज भी मुझे बहुत अच्छी लगती है, और मुगलई खाने तो इतने अच्छे होते हैं कि हम लोगों के खाने बिल्कुल जंगली मालूम होते हैं। कोरमा और रोगनजोश और शामी कबाब और मुर्ग मुसल्लम और जर्दा पुलाव—पपा, सच कहती हूँ, तुमने हमें सोलह साल तक बदजायका सूप पिला-पिलाकर मार डाला। अब भी घर में पीती हूँ, मगर आगे से कभी न पीऊँगी!

पपा, तुमने मेघदूत का अनुवाद नहीं पढ़ा है, वरना हिंदियों को कभी वहशी न कहते। उस रोज बादल घिरकर आये थे और हमारे सिरों के ऊपर लौकाट के पीले-पीले गुच्छे लटक रहे थे और ऐसी जीवनदायिनी हल्की धूप थी जब आनन्द ने हमें मेघदूत के अंश सुनाये। शेक्सपियर की महानता और गेटे का दर्शन, और शेली का प्रेम—सब कुछ मेघदूत में है। जो कौम ऐसी रचनाएँ दे सकती है, उसे असभ्य कहना अपनी बेवकूफी का सबूत देना है।

पपा, तुमने सोलह साल तक मुझसे धोखा किया। तुमने जिन्दगी-भर अपने को धोखे में रखा। तुमने अपने खून से हिन्दीपन अलग रखना चाहा। तुमने अपनी कौम पर हुकूमत की जब तुम्हें इसकी खिदमत करनी चाहिए थी। तुमने हिन्दू और मुसलमानों को लड़वाया और आज भी हथियार देकर लड़वा रहे हो, जब कि तुम्हें उनके घावों पर मरहम रखना चाहिए था। आज मेरी आँखें खुली हैं और मैंने इस जिन्दगी को छोड़ देने का फैसला किया है।

मैं आनन्द के साथ जा रही हूँ। आनन्द के पास अब कुछ नहीं है। उसका घर-बार लुट चुका है। उसकी पेकार्ड जला डाली गई है। उसके मा-बाप कत्ल किये जा चुके हैं। उसके पास एक कमीज है और एक पतलून है। लेकिन उसका दिल अपना है और वह बदले की भावना से पागल नहीं है। हम दोनों ने एक नयी इन्सानियत का पैगाम सुना है, उस भौतिक स्वर्ग की हमने कल्पना की है जिसमें हिन्दू और मुसलमान,

अँग्रेज और यहूदी और अमरीकी खुशी और मसर्रत के एक ही डेरे में आ जाते हैं।

पपा, तुम्हारी खिलन्डड़ी लड़की एक काटन की साड़ी पहनकर शरणार्थी कैम्प में जा रही है। हम लोग हिन्दुओं के पास जाएँगे, मुसलमानों के पास जाएँगे और शायद हमारी बात कोई नहीं सुनेगा और शायद इसी तरह हमारी मौत भी हो जायगी और शायद यह बड़ी बेवकूफी होगी, बड़ी भारी गलती होगी, एंग्लो इण्डियन समाज से गद्दारी होगी, मगर न जाने कौन मुझसे बार-बार यही कहता है कि तू यही कर। तू इसी तरह अपने बाप के गुनाहों का प्रायश्चित कर सकेगी। तू इसी तरह दो सौ साल के पाप के दाग धो सकेगी। तू इसी तरह अपनी आत्मा का सच्चा सौन्दर्य हासिल कर सकेगी। तू हिन्दुस्तानी औरत है। तेरा क्षेत्र सेवा है, नाचघर नहीं।

—रोजी

× × ×

जैक्सन लड़खड़ाते हुए कदमों से उठा। उसका नशा गायब हो चुका था। उसने जल्दी से दो पेग उँड़ेले और एक के बाद एक जल्दी-जल्दी पी गया। वह चलता-चलता कद्दे आदम आइने के सामने पहुँच गया। वह अपनी तरफ हैरत से देखने लगा।—मैं जैक्सन हूँ। रोजी मेरी बेटी है। यह रोजी का खत है!

उसकी आँखों के नीचे गढ़े पड़ गये थे। एकाएक उसे मालूम हुआ कि उसके चेहरे पर हिन्दी नक्श प्रकट हो रहे हैं। यह नाक अँग्रेज की नहीं है, यह होंठ अँग्रेज के नहीं हैं, यह माथा, यह कान, यह आँखें, यह ठोढ़ी, यह तो अँग्रेज के नहीं हैं। मैं हिन्दोस्तानी हूँ। मैं हिन्दोस्तानी हूँ। नहीं-नहीं, मैं अँग्रेज हूँ। मैं अँग्रेज हूँ। मेरा घर यार्कशायर में है। मेरी बीवी एक अँग्रेज काउंटेस है। उसके सिर पर रोमन ताज है और वह फेयर हाल में मेरा इन्तजार कर रही है!

उसने दोनों हाथों से अपना सिर पकड़ लिया। क्योंकि अब फिर हिंदोस्तानी नक्श उभर रहे थे—वही हिन्दोस्तानी माथा, वही काले बाल, ठोड़ी, वही होंठ, वही कान, वही हिन्दी आँखें, भौंहों को काट तक तो हिंदोस्तानी है।

जैक्सन चीख उठा—'नहीं-नहीं, मैं हिन्दोस्तानी नहीं हूँ। मैं अँग्रेज हूँ। मैं हिन्दोस्तानी नहीं हूँ, मैं अँग्रेज हूँ, खालिस अँग्रेज....यार्कशायर... डार्बी...काउंटेस...नारमन...थोब्रेन...नाइट किंग आर्थर.......!'

शीशे के चारो तरफ हिन्दोस्तानी कहकहे लगा रहे थे—हिन्दोस्तानी ही हिन्दोस्तानी—चारों तरफ हिन्दोस्तानी चेहरे कहकहे लगाते हुए, करीब आते हुए, और करीब आते हुए......

जैक्सन ने पिस्तौल उठाकर फायर कर दिया।

दूसरे ही क्षण वह फर्श पर गिर पड़ा। उसकी कनपटी से खून बह रहा था।

लालबाग़

कमलाकर के जबड़े बहुत मज़बूत थे—इतने मज़बूत कि गालों की हड्डी और जबड़ों के बीच के माँस में गढ़े पड़ गये थे। उसका रंग गोरा था, कद छोटा, बदन गठा हुआ। आँखों में बिल्ली की-सी चमक और मक्कारी पाई जाती थी। उम्र पचास के करीब होगी, लेकिन देखने में वह तीस के ऊपर नहीं, तीस से कुछ कम ही मालूम होता था।

कमलाकर लालबाग का मशहूर दादा था। बचपन में उसने जेब कतरने का हुनर सीखा था। दो-चार बार जेल जाकर वह बम्बई के सबसे बड़े व्यवसाय का एक प्रतिष्ठित सदस्य बन गया था। यों तो बम्बई एक कारोबारी शहर है, व्यवसाय का केन्द्र है; यहाँ मिलें, फैक्टरियाँ, तिजारती गोदाम, सब कुछ मौजूद हैं; लेकिन लोहा, काटन, तेल, कागज़ और अनाज के काले व्यापार से भी बढ़ कर जो व्यवसाय यहाँ कमाल को पहुँचा हुआ है, वह जरायमपेशा लोगों का कारोबार है। इसमें करोड़ों रुपयों का लेन-देन होता है। मलाबार हिल से लेकर मदनपुरा की झोपड़ियों तक इसके भुगतान करनेवाले फैले हुए हैं। कमलाकर इसी सुप्रतिष्ठित कारोबार का आदमी था और लालबाग में दादागीरी करता था।

दादागीरी आसान काम नहीं और करने से नहीं आती। हिन्दोस्तान

और पाकिस्तान का गवर्नर जेनरल बनना आसान है, लेकिन लालबाग़ का दादा बनना आसान नहीं। कमलाकर ने यह ताज पचास साल की कोशिशों के बाद हासिल किया था। बचपन में अपने माता-पिता के साथ वह कारदार से बम्बई आया था। यहाँ उसके माँ-बाप विक्टोरिया मिल में नौकर हो गए थे। वह दिन भर अपने बराबर के लड़कों के साथ गलियों में खेलता रहता। ट्रामों पर बिना टिकट लिये सवार होता, मेवा बेचने वालों से उलझता, बूट पालिश करनेवालों को धमकाता, अच्छे कपड़े पहने राह चलनेवालों से भीख माँगता, पानवालों की दुकान से बीड़ी उड़ाता और इस तरह के कई एक भले काम करता जिनसे गरीबों के बच्चों का भविष्य बनता रहता है। फिर एक मेहरबान ने तरस खाकर उसे जेब कतरने का फ़न सिखा दिया और अपनी समझ में उसे राह पर लगा दिया।

यह रास्ता उसे तीन चार बार जेल ले गया। पहली बार जब वह रिफार्मेटरी स्कूल में गया तो उसे अपना गाँव याद आया, उसे छोटे-छोटे मुर्गी के चूज़े याद आये जिनसे वह अपने घर के आंगन में खेला करता था। उसे वह नदी के किनारे जामुन का पेड़ याद आया जहाँ वह सुन्दर और परियों की तरह आकर्षक गिलहरियों की उछल-कूद देखने में खोया रहता था। दोन्दे की झाड़ियाँ याद आयीं जो नदी के किनारे उग रही थीं और जहाँ उसने एक बार श्यामा के घोंसले में तीन बहुत ही नर्म व नाज़ुक चितकबरे अंडों को देखा था। उसने उन्हें अपनी हथेलियों में उठा लिया और देर तक उन्हें छूता रहा। फिर उसने अंडे घोंसले में रख दिये और एक खूबसूरत तीतरी के पीछे भागा। उसके भागने से एक खरगोश चौकन्ना हो गया और उसके सामने से, लम्बे-लम्बे कान खड़े किये, तीर की तरह भागा और वह वहीं खड़ा होकर हँसने लगा। तीतरी फ़ज़ा में रंग भर रही थी, उसके कहकहे गूंज रहे थे। एकाएक खरगोश दूर जाकर खड़ा हो गया और आश्चर्य से मुड़ कर उसकी तरफ़ देखने लगा कि यह लड़का हँस क्यों रहा है।

पहली बार कमलाकर को यह सब कुछ याद आया। दूसरी बार वह रिकार्मेटरी में नहीं, जेल में लाया गया। अब उसे बंबई की गलियाँ याद आयीं। बम्बई के बाज़ार और मानसून की बारिश जब गरम-गरम उबली हुई नमकीन मूँगफलियाँ चाय के साथ खाने में मज़ा आता है। और इसके बाद पाँच शेरवाली बीड़ी। उसे फुटबाल के मैच याद आये जो उसके करीब ही एंग्लो इण्डियन क्लब लालबाग में हुआ करते थे। कितनी दिलचस्पी थी उसे फुटबाल में। जिन्दगी भर उसने कभी फुटबाल नहीं खेला था। वह फुटबाल को हाथ लगाना चाहता था। यह गोल-गोल कुदना जो धागे से हवा में उड़ता है और ज़मीन पर उछल कर फिर फ़ज़ा में उड़ जाता है—धम-धम इधर, धम-धम उधर—कमलाकर चाहता एक ऐसी किक लगाये कि फुटबाल ऊपर हवा में दूर मीलों तक ऊपर चला जाये यहाँ तक कि किसी को भी नजर न आए और सब लोग उसे अचम्भे में ताकते रह जाएँ। लेकिन ऐसा कभी नहीं हुआ। वह तो सिर्फ फुटबाल देखनेवाले तमाशाइयों की जेबें काट सकता था,—और बस।

जेबें काटने के लिए तीन जगहें सबसे अच्छी हैं। एक तो खेल का मैदान जहाँ तमाशाइयों को खेल में इतनी दिलचस्पी होती है कि वह अपनी सारी सुध-बुध भूल जाते हैं।

दूसरी जगह है राजनीतिक जल्से जहाँ वक्ता अपनी धधकती हुई बातों से लोगों के दिलों में—यानी हिन्दुओं के दिलों में मुसलमानों के खिलाफ और मुसलमानों के दिलों में हिन्दुओं के खिलाफ और हिन्दुस्तानियों के दिलों में अंग्रेज़ों के खिलाफ आग लगाता रहता है।

कमलाकर भी इन राजनीतिक जल्सों में जाता। उसे मीठे, संभले हुए और गम्भीर भाषण पसन्द नहीं आते थे। ऐसे मौकों पर लोग जम्हाइयाँ लेने लगते और अपनी जेबों से खबरदार हो जाते थे। हाँ, ऐसे भाषण बहुत कम होते थे, यही ग़नीमत थी। घृणा की बातें लोग बड़ी खुशी से सुनते थे। मोहब्बत, रवादारी, सुलह, अमन की बातें लोगों को

पसन्द न आती थीं। इस लिए अच्छे वक्ताओं को उसने ऐसी गलती करते कभी नहीं पाया था।

राजनीतिक जलसों में जाने से पहले कमलाकर बोलने वाले का नाम पूछ लिया करता था था। जब फग्गूमल हलवाई चर्खे के लाभों पर भाषण देने के लिए आते तो वह समझ जाता कि अब इस जल्से में किसी की जेब काटना मुश्किल होगा। जब चुगलई फटकार कर गरजदार आवाज़ में बंबई को संयुक्त महाराष्ट्र में शामिल करने की धमकी देते और बम्बई के गैर-मरहठा लोगों को फटकारते तो कमलाकर समझता कि आज दो-चार जेबें जरूर काटी जाएँगी। इसलिए वह हमेशा पूछ कर और सोच समझ कर राजनीतिक जल्सों में जाता था।

हाँ, रेल के प्लैटफार्म पर वह ज़रूर जाता था—हर रोज़ दिन में दो-तीन बार, खास तौर से सांझ के वक्त जब लोग घरों को लौटते। उस जल्दी, घबराहट, बेचैनी और ताबड़तोड़ घर पहुँचने की धुन में जो इस मजमें में होती है, उसे अपना काम करने का मौका मिल ही जाता था। लेकिन अब अपने इस पेशे से उसका मन कुछ फिर-सा गया था, जिसने उसे दो बार जेल की हवा खिलाई थी। इसलिए तीसरी बार जब वह जेल आया तो खूब चौकन्ना होके—जैसे वह किसी स्कूल में दाखिल हो रहा हो।

उसने दूसरे जरायमपेशा कैदियों से मेलजोल पैदा किया और उसे मालूम हुआ कि अब तक वह बिस्मिल्लाह के ही गुम्बद में था। बंबई में तो एक से एक ऊँचा कारबार पड़ा है जिसमें लाखों रुपये रोज का हेर-फेर होता है। यह जेब कतरना भी कोई रोज़गार है। आदमी काम करे तो लड़कियों को बेचने, लाने-लिवाने-बिकवाने का काम करे, अहमदाबाद से चरस-अफीम-भंग की दरामद करे, शराब की भट्टी लगाए, कल्याण में बैठ कर कोकीनसाज़ी करे। फिर चोर बाज़ार के सौदे हैं, कियारखाने हैं, बड़े-

भंगी गंदगी जमा करके रखते हैं, वहाँ एक लड़के की लाश पड़ी थी—अधनंगी, कुर्ता लिपटा हुआ, आँतें बाहर निकली हुई, हाथ में तेल की शीशी, शायद घर से माँ ने बाज़ार भेजा था कि सालन में कड़ी लगाने के लिए तेल ले आए।

"कैसे पहचाना ?"

शंकर ने इशारा करके कहा—"यह तेल की शीशी ले लो। किसी गरीब हिन्दू के काम आ जाएगी।"

"दूसरा मौका कौन-सा है ?" कमलाकर ने फिर पूछा।

"वह मेरे इलाके में है," बोरकर ने आगे बढ़कर और अपने उस्ताद को खुश करने के लिए बत्तीसी दिखाते हुए कहा।

बोरकर का माथा कोरा था, कान बड़े और दाँत बाहर निकले हुए। उसकी बाँहें सूखी थीं और हाथ बड़े-बड़े—इतने बड़े कि उन्हें देखने से ही डर मालूम होता था।

तंग गलियों से गुज़रते हुए वह परेल के उत्तर में कारदार स्टूडियो के बहुत आगे निकल गए जिधर एक अकेली सड़क सुनसान में से गुज़रती हुई डॉक यार्ड की तरफ जाती थी। यहाँ एक गढ़े में एक बुड्ढे की लाश पड़ी हुई थी। लाश से मालूम होता था जैसे यह आदमी जिन्दगी भर जिन्दा न रहा हो। होठों पर, माथे पर, आँखों की पुतलियों में, पेट पर—बदन के हर हिस्से पर मुसलसल मौत के वह निशान थे जो हिन्दोस्तान में एक ग़रीब आदमी के पैदा होते ही शुरू हो जाते हैं—और रोज़-रोज़ बढ़ते ही जाते हैं।

इस बुड्ढे की जिन्दगी एक ऐसी पुरानी सड़ी-गली किताब थी जिसके हर पन्ने पर भूख, बेकारी, अकाल की भयानकता अंकित थी। यह किताब कीचड़ में पड़ी थी, एक गढ़े में। यह ज़िन्दगी जो एक गढ़े में शुरू हुई और एक गढ़े में ही खत्म हो गई। अकड़े-अकड़े पाँव जो हमेशा

कीचड़ में चलते रहे, यह होंठ जिन्हें कभी दो वक्त खाना नहीं मिला, यह कान जिन्होंने कभी इक़बाल का नग्मा नहीं सुना, यह आँखें जो सदा खूबसूरती से अपरिचित रहीं—क्यों ऐसी मुसलसल मौत को लोग जिन्दगी कहते हैं !

और अब यह लाश कमलाकर का इन्तजार कर रही थी।

"अरे यह तो रशीद की लाश है!"

रशीद बरेली का रहने वाला था। बम्बई के लालबाग में तीस बरस से मूंगफली बेचता था। इतना पुराना था वह कि ट्रामवाले और मजदूर, दूकानदार और मुंशी लोग, गुजराती सेठों के मुनीम और सूदखोर पठान भी उसे जानते थे। वह इतना पुराना था जैसे बस का स्टैण्ड, या विक्टोरिया मिल की घड़ी, या ईरानी का रेस्तराँ। लालबाग उसके बिना अपूर्ण था। मूंगफली भूनने, तलने और उसे बड़े ही भले ढंग से बेचने में उसे कमाल हासिल था। उसकी जिन्दगी हिन्दुओं के साथ बसर होती थी। उन्हीं के साथ उसने अपना लड़कपन, अपनी जवानी और अपना बुढ़ापा बसर किया था। इसी मोहल्ले में उसकी शादी हुई थी और गुजराती सेठों ने पाँच सौ रुपयों से उसकी मदद की थी। इसी इलाके में उसके बीवी-बच्चे बिना किसी डर के घूमते थे। वह लाल बाग की उपज थे, उसी का एक हिस्सा थे—उसकी गमी और खुशी के भागीदार—इसे छोड़ कर वह कहाँ जाते !

जब फसाद शुरू हुआ तो बहुतेरे मुसलमानों ने उससे कहा कि वह लालबाग छोड़ कर चला जाए। लेकिन शैदू ने हँस कर टाल दिया—"मैं अपने भाई-बन्दों में हूँ। मुझे कोई क्या कहेगा !"

अभी दो रोज हुए कमलाकर ने भी उससे यही कहा था—"शैदू मियाँ, हम तो उन मुसलमानों के खिलाफ हैं जिन्होंने हमारे देस के टुकड़े-टुकड़े कर दिये हैं। तुम तो अपने आदमी हो। तुम्हारा कोई बाल बाँका नहीं कर सकता।"

एक ऐसा अनजान भोलापन जैसे अपनी मौत का यकीन ही न आ हो, जैसे उनकी ज़िन्दगियाँ कह रही हों—"हमें यहाँ मरना नहीं है। तो वल्लर से आए हैं। हम शहद, केसर और सफेद बर्फ के देश से आए हमारे गाँव में आज सेब के फूल खिले हुए हैं और मखमली हरियार फ़र्श है। आड़ुओं के लाल गुच्छे लटक रहे हैं। नाशपाती की टहनि हरी, चिकनी, पत्तियाँ फूट रही हैं। जेहलम का साफ़ पानी नीले पत्थ फिसलता हुआ गुनगुना रहा है—हमारी जिन्दगियाँ वापिस दे दो, हम नहीं रहेंगे, हमारा देश काश्मीर है!"

लड़की की नाज़ुक गर्दन में, शह रग पर घाव था और उसके मां काश्मीर की सुबह रो रही थी। उसके ओठों पर पराये देश की ओ और उसकी नीली आँखों के झरने खामोश थे। उसका हाथ खाविन्द के हाथ में था। काश्मीर का शाहजादा अपने सदियों के चि में लिपटा हुआ, अपनी गरीबी, बेबसी और नाउम्मीदी के बावजू क़त्लगाह के सिंहासन पर एक अजीब अन्दाज़ में सो रहा था। उसका हाथ अपनी बीवी के हाथ में था और दूसरा हाथ जकड़ा हुआ, स सवाल बन कर हवा में उठा हुआ था। उसके बदन पर बहुत से घा क्योंकि उसने अपनी जान बचाने की कोशिश की थी और मरते दम अपनी प्यारी बीवी, अपनी जिन्दगी की इज्जत को बचाना चाहा था;— नाकाम कोशिश.........!

काश्मीर मर गया था और धान के खेत सूख गए थे और बर्फ श और डर से धरती में समा गई थी और वह अकड़ा हुआ हाथ कह था—जालिमों, तुमने मुसलमान को नहीं मारा है, तुमने इन्सान को है, तुमने हिन्दुस्तान को मारा है, तुमने ताजमहल, फतहपुर सीकरी शालीमार को क़त्ल किया है; यह अशोक की लाश है, यह अकब कफ़न है, यह पाँच हजार साल पुरानी तहजीब का मुर्दा है—यह म हिन्दू और मुसलमान राजनीतिज्ञ, सामन्ती जागीरदार, यह फरेबी पूँजी

किसके खून से और किसकी बरबादी से अपनी हकूमतों की इमारत खड़ी कर रहे हैं ?

कमलाकर ने हँस कर कहा—"बड़े ठाठ से आए थे अपने किसी रिश्तेदार से मिलने। मालूम नहीं था, यहाँ दादा कमलाकर से मुलाकात होगी।"

कमलाकर के गुर्गे हँसने लगे।

कुछ रुक कर कमलाकर ने जेब से सौ रुपये के नोट निकाले और धूरतसिंह को दे दिए। फिर उससे कहा—"इन लाशों को ठिकाने लगा दो!"

× × ×

शाम के अखबार 'हिन्द' में कमलाकर ने पढ़ा—"आज बम्बई में बिलकुल अमन रहा। अगरीपाड़ा, गोलपीठा, डोंगरी, कालबादेवी, भिंडी बाजार—कहीं पर कोई वारदात नहीं हुई। सिर्फ लाल बाग में चाकूजनी की चार वारदातें हुईं। बाकी सब जगह अमन है।"

कमलाकर ने मुसकरा कर अखबार को तह करके पानवाले को दे दिया और कहा—"एक बण्डल शेर मार्का बीड़ी का दे दो—और यह है तुम्हारी कोकीन।"

अमृतसर

आज़ादी से पहले—

जलियाँवाला बाग में हज़ारों की भीड़ थी। इस भीड़ में हिन्दू भी थे और मुसलमान भी। हिन्दू मुसलमानों से और मुसलमान सिखों से अलग साफ़ पहचाने जा सकते थे। उनकी सूरतें अलग थीं, मिज़ाज अलग थे, रहन-सहन अलग था, मजहब अलग था, लेकिन आज यह सब लोग जलियाँवाला बाग में एक ही दिल लेकर आए थे। इस दिल में एक ही जोश उबाल खा रहा था और इस जोश की तेज और तुन्द आँच ने समाज और सभ्यता की भिन्नताओं को एक कर दिया था। दिलों में क्रांति का एक एक ऐसा निरन्तर प्रवाह था कि जिसने आसपास के वातावरण में भी बिजली दौड़ा दी थी। ऐसा मालूम होता था कि इस शहर के बाजारों का एक पत्थर, उसके मकानों की हर ईंट इस खामोश जज्बे से परिचित है और इस लरज़ती हुई धड़कन से ओतप्रोत है—जो हर क्षण के साथ मानो कहती जाती है—आज़ादी, आज़ादी, आज़ादी!

जलियाँवाला बाग में हज़ारों की भीड़ थी और सभी निहत्थे थे और सभी आज़ादी के दीवाने थे। हाथों में लाठियाँ थीं न रिवाल्वर, ब्रेनगन

न स्टेनगन, हैंडग्रीनेड नहीं थे, देशी या विलायती बनावट के बम न थे। मगर पास में कुछ न होते हुए भी निगाहों की गर्मी किसी भूचाल के प्रलयकारी लावे की तरह तेज़ और गर्म मालूम होती थी।

साम्राजी फौजों के पास लोहे के हथियार थे और यहाँ दिल लोहे के बन गए थे और रूहों में ऐसा पवित्र तेज समा गया था जो सिर्फ उच्चकोटि की कुरबानी से हासिल होता है। पंजाब के पाँचों दरियाओं का पानी और उनके रोमान्स और उनका सच्चा इश्क और उनकी ऐतिहासिक बहादुरी आज हर व्यक्ति के, हर बच्चे और बूढ़े के, टिमटिमाते हुए चेहरों पर चमक रही थी—एक ऐसा उजला-उजला गर्वीलापन जो उसी वक्त हासिल होता है जब कौम जवान हो जाती है, सोया हुआ मुल्क जाग उठता है। जिन्होंने अमृतसर के यह तेवर देखें हैं, वे गुरुओं के इस पवित्र नगर को कभी नहीं भुला सकते।

जलियाँवाला बाग में हज़ारों की भीड़ थी और गोली भी हजारों पर चली। तीनों तरफ़ से रास्ता बन्द था और चौथी तरफ एक छोटा-सा दरवाज़ा था। यह दरवाज़ा जो जिन्दगी से मौत को जाता था। हज़ारों ने खुशी-खुशी शहादत का जाम पिया। आज़ादी के लिए हिन्दू, मुसलमानों और सिखों ने मिल कर दिलों के खज़ाने लुटा दिए और पाँचों दरियाओं की सरज़मीन में एक और दरिया का इज़ाफ़ा कर दिया। यह उनके मिले जुले खून का दरिया था, यह उनके लहू की तूफानी नदी थी जो अपनी उमड़ती हुई लहरों को लेकर उठी और साम्राजी शक्तियों को घासफूस की तरह बहा कर ले गई।

पंजाब ने सारे मुल्क के लिए अपने खून की कुरबानी की और इस विस्तृत आसमान के नीचे किसी ने आज तक भिन्न सभ्यताओं, भिन्न मजहबों और भिन्न मिजाजों को एक ही रंग में इस तरह रंगते हुए नहीं देखा। यह शहीदों के खून का पक्का रंग था—इसमें चमक थी, सौन्दर्य था—आज़ादी की चमक, आज़ादी का सौन्दर्य... ।

२

सद्दीक कटरा फतेहखाँ में रहता था। कटरा फतेहखाँ में ओमप्रकाश भी रहता था जो अमृतसर के एक मशहूर व्यापारी का बेटा था। सद्दीक उसे और ओमप्रकाश सद्दीक को बचपन से जानता था। यह दोनों दोस्त न थे, क्योंकि सद्दीक का बाप कच्चा चमड़ा बेचता था और गरीब था और ओमप्रकाश का बाप बैंकर था और अमीर था। लेकिन दोनों एक-दूसरे को जानते थे। दोनों पड़ोसी थे और आज दोनों जलियाँवाला बाग में इकट्ठा होकर एक ही जगह पर अपने नेताओं के विचारों और भावनाओं को अपने दिल में जगह दे रहे थे। कभी-कभी वह इस तरह एक-दूसरे की तरफ देख लेते और ऐसे मुसकरा उठते जैसे वह सदा से बचपन के साथी हैं और एक-दूसरे का भेद जानते हैं। दिल की बात निगाहों में उतर आई थी—आजादी, आजादी, आजादी!

और जब गोली चली तो पहले ओमप्रकाश के लगी, कंधे के पास। वह जमीन पर गिर गया। सद्दीक उसे देखने के लिए झुका तो गोली उसकी टाँग को छेदती हुई पार हो गई। फिर दूसरी गोली आई फिर तीसरी—फिर जैसे बारिश होती है, इस तरह गोलियाँ बरसने लगीं और खून बहने लगा—सिखों का खून मुसलमानों में और हिन्दुओं का खून मुसलमानों में मिल कर एक साथ बहने लगा। एक ही गोली थी, एक ही शक्ति थी, एक ही निगाह थी जो सब दिलों को छेदती चली जा रही थी।

सद्दीक ओमप्रकाश पर और भी झुक गया। उसने अपने जिस्म को ओमप्रकाश के लिए ढाल बना लिया और फिर वह और ओमप्रकाश दोनों, गोलियों की बारिश में, घुटनों के बल घिसटते-घिसटते उस दीवार तक पहुँचे जो इतनी ऊँची न थी कि उसे कोई फलाँग न सकता, लेकिन इतनी ऊँची जरूर थी कि उसे फलाँगते समय किसी सिपाही की सनसनाती गोली का निशाना बनना ज्यादा मुश्किल न होता।

सद्दीक ने अपने आपको दीवार के साथ लगा दिया और जानवर की तरह चारों पंजे ज़मीन पर टेक कर कहा—"लो प्रकाशजी, खुदा का नाम लेकर दीवार फलाँग जाओ।"

गोलियाँ बरस रही थीं।

प्रकाश ने बड़ी मुश्किल से सद्दीक की पीठ का सहारा लिया और फिर ऊँचा होकर उसने दीवार को फलाँगने की कोशिश की।

एक गोली सनसनाती हुई आई।

"जल्दी करो!" सद्दीक ने नीचे से कहा।

लेकिन इससे पहले प्रकाश दूसरी तरफ जा चुका था। सद्दीक ने उसी तरह उकड़ूँ रहकर इधर-उधर देखा और फिर एकदम सीधे होकर जो एक छलाँग लगाई तो दीवार की दूसरी तरफ, लेकिन दूसरी तरफ जाते-जाते एक सनसनाती हुई गोली उसकी दूसरी टाँग के पार हो गई।

सद्दीक प्रकाश के ऊपर जाकर गिरा; फिर जल्दी से अलग होकर उसे उठाने लगा।

"तुम्हें ज्यादा चोट तो नहीं आई, प्रकाश?"

लेकिन प्रकाश मरा पड़ा था। उसके हाथ में हीरे की अँगूठी अभी ज़िन्दा थी। उसकी जेब में दो हज़ार के नोट कुलबुला रहे थे। उसका गर्म खून अभी तक जमीन की प्यास बुझा रहा था। हरकत थी, जिन्दगी थी, बैचैनी थी, लेकिन वह खुद मर चुका था।

सद्दीक ने उसे उठाया और घर ले चला। उसकी दोनों टाँगों में बहुत तेज़ दर्द था। लहू बह रहा था। हीरे की अँगूठी ने बहुत कुछ कहा-सुना, लोगों ने बहुतेरा समझाया। वह तहजीब जो भिन्न थी, वह मजहब जो अलग था, वह समाज जो बेगाना था—उसने ताने-तिश्नों से भी काम लिया, लेकिन सद्दीक ने किसी की न सुनी। उसने अपने बहते हुए लहू और अपनी निकलती हुई जिन्दगी की फरियाद भी नहीं सुनी और अपने रास्ते पर चलता गया।

यह रास्ता बिल्कुल नया था—यद्यपि वह कटरा फतेहखाँ को ही जाता था। आज फरिश्ते उसके साथ थे, हालाँकि एक काफिर को वह अपने कंधे पर उठाए हुए था। आज उसकी रूह इस हद तक भरी-पूरी और सम्पन्न थी कि कटरा फतेहखाँ पहुँच कर उसने सबसे कहा—"यह लो हीरे की अँगूठी और यह लो दो हजार के नोट और यह है शहीद की लाश!"

इतना कह कर सद्दीक वहीं गिर गया और शहर वालों ने दोनों का जनाज़ा इतनी धूम-धाम से निकाला मानो वे दोनों सगे भाई थे।

३

अभी कर्फ्यू नहीं हुआ था। कूचा रामदास की दो मुसलमान औरतें, एक सिख औरत और एक हिन्दू औरत, सब्जी खरीदने आईं। जब वह गुरुद्वारे के सामने से गुज़रीं तो हरेक ने झुक कर सिर नवाया और फिर सब्ज़ी खरीदने में लग गईं। उन्हें बहुत जल्दी लौटना था। कर्फ्यू होने वाला था और हवा में शहीदों के खून की पुकार गूँज रही थी। फिर भी बातें करने और सौदा खरीदने में उन्हें देर हो गई और जब वह वापिस चलने लगीं तो कर्फ्यू लगने में कुछ ही मिनट बाकी थे।

बेगम ने कहा—"आओ, इस गली से निकल चलें। वक्त से पहुँच जाएँगी।"

पारो ने कहा—"पर वहाँ तो पहरा है गोरों का।"

शाम कौर बोली—"और गोरों का कोई भरोसा नहीं।"

ज़ैनब ने कहा—"वह औरतों को कुछ न कहेंगे। हम घूँघट काढ़े निकल जाएँगी। जल्दी से चलो।"

वह पाँचों दूसरी गली से हो लीं। फौजियों ने कहा—"इस झंडे को सलाम करो। यह यूनियन जैक है।"

औरतों ने घबराकर और घिघियाकर सलाम किया।

"अब यहाँ से वहाँ तक"—फौजी ने गली की लम्बाई बताते हुए कहा—"घुटनों के बल चलती हुई यहाँ से जल्दी से निकल जाओ।"

"घुटनों के बल—यह हम से न होगा!" ज़ैनब ने चमककर कहा।

"और झुक कर चलो......सरकार का हुक्म है, घुटनों के बल घिसट कर चलो।"

"हम तो यों जाएँगे,"शाम कौर ने तनकर कहा—"देखें, कौन रोकता है हमें!"

यह कह कर वह चली।

"ठहरो, ठहरो," पारो ने कहा।

"ठहरो ठहरो!" गोरे ने कहा—"हम गोली मारेगा।"

शाम कौर सीधी जा रही थी।

ठाँय!

शाम कौर गिर गई।

ज़ैनब और बेगम ने एक दूसरे की तरफ देखा और फिर वह दोनों घुटनों के बल गिर गईं।

गोरा खुश हो गया। उसने समझा, सरकार का हुक्म बजा ला रही हैं।

ज़ैनब और बेगम ने घुटनों के बल गिरकर अपने दोनों हाथ ऊपर उठाए और कुछ क्षणों की स्तब्धता के बाद वह दोनों सीधी खड़ी हो गईं और गली पार करने लगीं।

गोरा भौंचक्का रह गया। फिर गुस्से से उसके गाल तमतमा उठे और और उसने राइफल सीधी की।

ठाँय, ठाँय!

पारो रोने लगी—"अब मुझे भी मरना होगा। यह क्या मुसीबत है। मेरे पतिदेव, मेरे बच्चो, मेरी माँ जी, मेरे पिताजो, मेरे बीरू, मुझे छिमा

करना। आज मुझे भी मरना है। मैं मरना नहीं चाहती, फिर भी मुझे मरना होगा। मैं अपनी बहनों का साथ नहीं छोड़ सकती!"

पारो रोते-रोते आगे बढ़ी।

गोरे ने नर्मी से उसे समझाया—"रोने की ज़रूरत नहीं। सरकार का हुक्म मानो और इस गली से यों घुटनों के बल गिरकर चली जाओ। फिर तुम्हें कोई कुछ न कहेगा!"

गोरे ने खुद घुटनों पर गिरकर उसे चलने का ढंग बताया।

पारो रोते-रोते गोरे के क़रीब आ गई। गोरा अब सीधा तनकर खड़ा था। पारो ने जोर से उसके मुँह पर थूक दिया और फिर पलटकर गली को पार करने लगी।

वह गली के बीच से तन कर चली जा रही थी और गोरा उसकी तरफ़ हैरत से देख रहा था। कुछ क्षण के बाद उसने अपनी बन्दूक सीधी की और पारो, जो अपनी सहेलियों में सबसे कमज़ोर और डरपोक थी, सबसे आगे जाकर मर गई।

पारो, ज़ैनब, बेगम, शाम कौर......

घर की औरतें, पर्दे में रहनेवाली महिलाएँ, अपने सीनों में अपने पति का प्यार और अपने बच्चों की ममता का दूध लिये ज़ुल्म की अँधेरी गली से गुज़र गईं। उनके जिस्म गोलियों से छलनी हो गए, लेकिन उनके पाँव नहीं डगमगाए। उस वक्त किसी की मोहब्बत ने पुकारा होगा, किसी के नन्हें हाथों का बुलावा आया होगा, किसी की सुहानी मुसकराहट दिखाई दी होगी, लेकिन उनकी रूहों ने कहा—"नहीं, आज तुम्हें झुकना नहीं है। आज सदियों के बाद वह क्षण आया है जब सारा हिन्दोस्तान जाग उठा है और सीधा तन कर इस गली से गुज़र रहा है—सिर उठाए आगे बढ़ रहा है—सिर उठाए आगे बढ़ रहा है!"

ज़ैनब, बेगम, पारो, शाम कौर—किसने कहा इस मुल्क से सीता उठ गई?—किसने कहा इस देश में अब सीता सती सावित्री पैदा नहीं

होतीं ?—आज इस गली का ज़र्रा-ज़र्रा किसके पवित्र लहू से आलोकित है। शाम कौर, ज़ैनब, पारो, बेगम, आज तुम खुद इस गली से सिर ऊँचा करके नहीं गुज़री हो; आज तुम्हारा देश गर्व से सिर ऊँचा किए इस गली से गुज़र रहा है। आज आज़ादी का ऊँचा झंडा इस गली से गुज़र रहा है। आज तुम्हारे देश, तुम्हारी सभ्यता तुम्हारे धर्म की सर्वमान्य परम्पराएँ ज़िन्दा हो उठी हैं, आज इन्सानियत का सिर गर्व से ऊँचा उठा है—तुम्हारी रूहों पर हज़ारों लाखों सलाम !

अमृतसर—आज़ादी के बाद :

पन्द्रह अगस्त १९४७ को हिन्दोस्तान आज़ाद हुआ, पाकिस्तान आज़ाद हुआ। पन्द्रह अगस्त १९४७ को हिन्दोस्तान भर में आज़ादी का उत्सव मनाया जा रहा था और कराची में आज़ाद पाकिस्तान के खुशी से भरे हुए नारे लगाए जा रहे थे।

पन्द्रह अगस्त १९४७ को लाहौर जल रहा था और अमृतसर में हिन्दू मुसलमान सिख सांप्रदायिक दंगों की भयानक लपटों में आ चुके थे, क्योंकि किसी ने पंजाब की जनता से नहीं पूछा था कि तुम अलग रहना चाहते हो या मिलजुल कर—जैसे तुम सदियों से रहते आए हो !

सदियों पहले पूरी निरंकुशता का दौरदौरा था—और किसी ने जनता से कभी कुछ नहीं पूछा था। फिर अंग्रेज़ों ने अपने साम्राज्य की नींव डाली और उन्होंने पंजाब से सिपाही और घोड़े अपनी फौज में भर्ती किये और इसके बदले में पंजाब को नहरें और पेंशनें प्रदान कीं लेकिन उन्होंने भी यह सब कुछ पंजाब से पूछ कर थोड़े ही किया था।

इसके बाद राजनीतिक जागृति का दौर आया और इसके साथ-साथ जनतंत्रीय भावनाएं फैलीं और इन भावनाओं के साथ-साथ नेता मैदान में आए, राजनीतिक पार्टियों की नींव पड़ी, लेकिन फैसला करते वक्त इन्होंने

भी पंजाब जनता से कुछ न पूछा और एक नक्शा सामने रख कर कलम की नोक से पंजाब की भूमि के दो टुकड़े कर दिये।

फ़ैसला करने वाले राजनीतिक गुजराती थे, काश्मीरी थे, इसलिए पंजाब के नक्शे को सामने रख कर उस पर क़लम से एक लकीर खींच देना, एक सीमा क़ायम कर देना उनके लिए ज़्यादा मुश्किल न था।

नक्शा एक बहुत ही मामूली-सी चीज़ है। आठ आने रुपये में पंजाब का एक नक्शा मिलता है। उस पर लकीर खींच देना भी आसान है। एक काग़ज़ का टुकड़ा, एक रोशनाई की लकीर। वह कैसे पंजाब के दुःख को समझ सकते थे—उस लकीर को जो पंजाब के दिल को चीरती चली जा रही थी!

पंजाब के तीन मज़हब थे। लेकिन उसका दिल एक था। उसका लिबास एक था। उसकी ज़ुबान एक थी। उसके गीत एक थे। उसके खेत एक थे। उसके खेतों का रोमानी वातावरण, उसके किसानों के पंचायती वलवले एक थे। पंजाब में वह सब बातें मौजूद थीं जो एक सभ्यता, एक देश, एक राष्ट्रीयता के अस्तित्व की दुहाई देती हैं। फिर किस लिए इसके गले पर छुरी चलाई गई? फिर किस लिए इसकी रगों में बरसों की नफ़रत का बीज बो दिया गया? किस लिए इसके खलिहानों को शैतानियत, ज़ुल्म और मज़हबी बर्बरता की आग से जलाया गया?

"हमें मालूम न था...हमें अफ़सोस है......हम इस ज़ुल्म की निन्दा करते हैं...!"—ज़ुल्म और नफ़रत और मज़हबी पागलपन को भड़काने वाले, पंजाब की एकता को मिटानेवाले आज मगरमच्छ के आँसू बहा रहे हैं और आज पंजाब के बेटे दिल्ली की गलियों में और कराची के बाज़ारों में भीख माँग रहे हैं। उनकी औरतों की अस्मत लुट चुकी है और उनके खेत वीरान पड़े हैं। कहा जाता है कि हिन्दोस्तान और पाकिस्तान की सरकारों ने शरणार्थियों के लिए बीस करोड़ रुपया ख़र्च किया है—एक करोड़ शरणार्थियों के लिए बीस करोड़ रुपये यानी फ़ी कस बीस रुपये! बड़ा एहसान किया है हमारी सरकारों ने हम पर। अरे हम तो महीनों में बीस

रुपये की लस्सी पी जाते थे। और आज तुम हम लोगों को खैरात देने चले हो जो कल तक हिन्दोस्तान के सब किसानों से ज्यादा खुशहाल थे।

जनतंत्र के हिमायतियो, तुमने ज़रा पंजाब के किसानों से, उसके विद्यार्थियों से, उसके खेत के मजदूरों से, उसके दुकानदारों से, उसकी माताओं-बहुओं-बेटियों से ही पूछ लिया होता कि इस नक्शे पर जो यह काली लकीर लग रही है, उसके बारे में तुम्हारा क्या खयाल है? मगर वहाँ इसकी चिन्ता किसको होती। किसी का अपना वतन होता, किसी की अपनी जुबान होती, किसी के अपने गीत होते तो वह समझता कि यह गलती क्या है और इसका खमियाजा किसे भुगतना पड़ेगा!

यह दुःख वही समझ सकता है जो हीर-रांझे को जुदा होते हुए देखे, जो सोनी को महीवाल के विरह में तड़पता हुआ देखे, जिसने पंजाब के खेतों में अपने हाथ से गेहूँ की सब्ज बालियाँ उगाई हों और उसके कपास के फूलों के नन्हें चाँदों को चमकता हुआ देखा हो! यह राजनीतिज्ञ क्यों समझ सकते हैं इस दुःख को, जनवादी राजनीतिज्ञ थे न!

खैर, यह रोना-मरना तो होता रहता है। इन्सान को अभी इन्सान बनने में बहुत देर है। और फिर एक कहानी कहनेवाले को इससे क्या— उसे जिन्दगी से, विद्या और कला से, विज्ञान से, इतिहास व दर्शन से, क्या लगाव? उसे क्या गरज कि पंजाब मरता है या जीता है, औरतों की अस्मतें बरबाद होती हैं या सुरक्षित रहती हैं, बच्चों के गलों पर छुरी फेरी जाती है या उन पर मेहरबान ओठों के चुम्बन अंकित होते हैं। उसे इन सब बातों से अलग हो कर अपनी कहानी सुनानी चाहिए—अपनी छोटी-मोटी कहानी जो लोगों के दिलों को खुश कर सके। उसे यह बड़े बोल शोभा नहीं देते!

ठीक तो कहते हैं आप। इसलिए अब अमृतसर की आज़ादी की कहानी सुनिये, इस शहर की कहानी जहाँ जलियाँवाला बाग है, जहाँ उत्तरी हिन्द की सबसे बड़ी मंडी है, जहाँ सिखों का सबसे पवित्र गुरुद्वारा है,

जहाँ के राष्ट्रीय आन्दोलनों में हिन्दुओं और सिखों ने एक दूसरे से बढ़-चढ़ कर हिस्सा लिया है और जिसके बारे में कहा जाता था कि अगर लाहौर साम्प्रदायिकता का गढ़ है तो अमृतसर राष्ट्रीयता का केन्द्र है। इसी राष्ट्रीयता के इस बड़े केन्द्र की कहानी सुनिये।

पन्द्रह अगस्त सन् १९४७ को अमृतसर आजाद हुआ। पड़ोस में लाहौर जल रहा था, मगर अमृतसर आजाद था। उसके मकानों, दुकानों और बाजारों पर तिरंगे झंडे लहरा रहे थे। अमृतसर के राष्ट्रीय मुसलमान आजादी के इस उत्सव में सबसे आगे थे। क्योंकि आजादी के आन्दोलन में भी वे सब से आगे रहे थे। यह अमृतसर अकाली आन्दोलन का ही अमृतसर न था। यह अहरारी आन्दोलन का भी अमृतसर था। यह डाक्टर सत्यपाल का अमृतसर न था, यह किचलू और एहसाम उद्दीन का भी अमृतसर था। आज यह अमृतसर आजाद था और उसके राष्ट्रीयता से ओतप्रोत वातावरण में आजाद हिन्दोस्तान के नारे गूँज रहे थे। अमृतसर के मुसलमान, हिन्दू और सिख एक साथ खुश थे। जलियाँ वाले बाग के शहीद जिन्दा हो गये थे।

सांझ को स्टेशन पर जब रोशनी हुई तो आजाद हिन्दोस्तान और आजाद पाकिस्तान से दो स्पेशल गाड़ियाँ आईं। पाकिस्तान से आनेवाली गाड़ी में हिन्दू और सिख थे। हिन्दुस्तान से जानेवाली गाड़ी में मुसलमान थे। तीन-चार हजार लोग इस गाड़ी में और इतने ही दूसरी गाड़ी में। कुल छ-सात हजार लोगों में मुश्किल से दो हजार जिन्दा होंगे। बाकी लोग मरे थे और उनकी लाशें सिर कटी हुई थीं और उनके सिर नेजों पर लगा कर गाड़ी की खिड़कियों में सजाए गये थे!

पाकिस्तान स्पेशल पर मोटे-मोटे अक्षरों में लिखा हुआ था—'कत्ल करना पाकिस्तान से सीखो।" हिन्दुस्तान स्पेशल पर लिखा था, हिन्दी में—'बदला लेना हिन्दुस्तान से सीखो!'

इस पर हिन्दुओं और सिखों को बड़ा तैश आया—'जालिमों ने हमारे

भाइयों के साथ इतना बुरा सलूक किया है। हाय, हमारे यह हिन्दू और सिख शरणार्थी।"

वाकई, उनकी हालत देख कर तरस आता था। उन्हें फौरन गाड़ी से निकाल कर शरणार्थी कैम्प में पहुँचा दिया गया और सिखों और हिन्दुओं ने गाड़ी पर धावा बोल दिया—यानी अगर निहत्थे और अध-मुर्दा शरणार्थियों पर हमला करने को धावा कह सकते हैं तो वाकई यह धावा था। आधे से ज्यादा लोग मारे गए तब कहीं जाकर मिलिटरी ने स्थिति पर काबू पाया।

गाड़ी में एक बुढ़िया औरत बैठी थी। उसकी गोद में उसका एक नन्हा पोता था। रास्ते में उसका बेटा मारा गया था। उसकी बहू को जाट उठा कर ले गए थे। उसके आदमी को लोगों ने भालों से टुकड़े-टुकड़े कर दिया था। वह चुपचाप बैठी थी। उसके होठों पर आहें न थीं। उसकी आँखों में आँसू न थे। उसके दिल में दुआ न थी। ईमान में ताकत न थी। वह पत्थर का बुत बनी चुपचाप बैठी थी—जैसे वह कुछ सुन न सकती थी, देख न सकती थी, कुछ महसूस न कर सकती थी।

बच्चे ने कहा—"दादी अम्माँ, पानी!"

दादी चुप रही।

बच्चा चीखा—"दादी अम्मा, पानी।"

दादी ने कहा—"बेटा पाकिस्तान आएगा तो पानी मिलेगा।"

बच्चे ने कहा—"दादी अम्मा, क्या हिन्दुस्तान में पानी नहीं है?"

दादी ने कहा—"बेटा, अब हमारे देश में पानी नहीं है।"

बच्चे ने कहा—"क्यों नहीं है? मुझे प्यास लगी है। मैं तो पानी पियूँगा। पानी-पानी-दादी अम्मा, पानी पियूँगा, मैं पानी पियूँगा।"

"पानी पिओगे?" एक अकाली वालंटियर वहाँ से गुजर रहा था। लाल निगाहों से उसने बच्चे की तरफ देख कर कहा—"पानी पिओगे न?"

"हाँ," बच्चे ने सिर हिलाया।

"नहीं, नहीं !" दादी ने डर से घबरा कर कहा—"यह कुछ नहीं कहता आपको—यह कुछ नहीं माँगता आपसे। खुदा के लिए सरदार साहब इसे छोड़ दीजिये। मेरे पास अब और कुछ नहीं है।"

अकाली वालंटियर हँसा। उसने पायदान से रिसते हुए खून को अपनी ओक में जमा किया और उसे बच्चे के पास ले जाते हुए बोला—"लो, प्यास लगी है तो यह पीलो। बड़ा अच्छा खून है, मुसलमान का खून है।"

दादी पीछे हट गई। बच्चा रोने लगा। दादी ने बच्चे को अपने पीछे दुपट्टे से ढँक लिया और अकाली स्वयंसेवक हँसता हुआ चला गया। दादी सोचने लगी—"यह गाड़ी कब चलेगी। मेरे अल्लाह, पाकिस्तान कब आएगा ?"

एक हिन्दू पानी का गिलास लेकर आया—"लो, पानी पिला दो इसे।"

लड़के ने अपनी बाँहें आगे बढ़ाईं। उसके होंठ काँप रहे थे। उसकी आँखें बाहर निकली पड़ती थीं। उसके जिस्म का रोआँ-रोआँ पानी माँग रहा था।

हिन्दू ने गिलास जरा पीछे सरका लिया। बोला—"इस पानी की कीमत है। मुसलमान के बच्चे को पानी मुफ्त नहीं मिलता। इस गिलास की कीमत पचास रुपये है।"

"पचास रुपये।" दादी ने नम्रता के साथ कहा—"बेटा, मेरे पास तो चाँदी का एक छल्ला भी नहीं है। मैं पचास रुपये कहाँ से दूँगी।"

"पानी.......पानी.......पानी मुझे दो.......पानी का गिलास मुझे दे दो.......दादी अम्माँ, देखो यह हमें पानी नहीं पीने देता।"

"मुझे दो......मुझे दो !" एक दूसरे मुसाफिर ने कहा—"यह लो, मेरे पास पचास रुपये हैं।"

हिन्दू हँसने लगा—"यह पचास रुपये तो बच्चे के लिए थे। तुम्हारे लिए इस गिलास की कीमत सौ रुपये है। सौ रुपये दो और यह पानी का गिलास पी लो।"

"अच्छा, यह सौ रुपये ही लो—यह लो।"

दूसरे मुसलमान मुसाफिर ने सौ रुपये देकर गिलास ले लिया और उसे गटागट पीने लगा।

बच्चा उसे देख कर और भी चिल्लाने लगा—"पानी, पानी, दादी अम्माँ, पानी।"

मुसलमान मुसाफिर ने गिलास खाली करके अपनी आँखें बन्द कर लीं। गिलास उसके हाथ से छूट कर फर्श पर जा गिरा और पानी की कुछ बूँदें फर्श पर जा गिरीं।

बच्चा गोद से उतर कर फर्श पर चला गया। पहले उसने खाली गिलास को चाटने की कोशिश की। फिर फर्श पर गिरी हुई कुछ बूँदों को। फिर ज़ोर-ज़ोर से चिल्लाने लगा—"पानी, दादी अम्माँ, पानी—पानी।"

पानी था और पानी नहीं था। हिन्दू शरणार्थी पानी पी रहे थे और मुसलमान शरणार्थी प्यासे थे। पानी मौजूद था और मटकों की कतार प्लैटफार्म पर सजी हुई थी और पानी के नल खुले थे और भंगी शौच के लिए पानी हिन्दुओं को दे रहे थे। लेकिन पानी नहीं था तो मुसलमान शरणार्थियों के लिए, क्योंकि पंजाब के नक्शे पर एक काली मौत की लकीर खिंच गई थी—और कल का भाई आज दुश्मन हो गया था और कल जिसको हमने बहन कहा था वह आज हमारे लिए वेश्या से भी बदतर थी और कल जो अम्माँ थी आज बेटे ने उसको डायन समझ कर उसके गले पर छुरी फेर दी थी।

पानी हिन्दुस्तान में था और पानी पाकिस्तान में था; लेकिन पानी

कहीं न था, क्योंकि आँखों का पानी मर गया था और यह दोनों मुल्क नफरत के रेगिस्तान बन गए थे, कारवाँ अंधड़ की बरबादियों के शिकार हो गए थे। पानी था, मगर मृग मरीचिका के रूप में। जिस देश में लस्सी और दूध पानी की तरह बहते थे, वहाँ आज पानी नहीं था—और उसके बेटे प्यास से बिलख-बिलख कर मर रहे थे। क्योंकि पानी था और नहीं था। पंजाब के पाँचों दरिया बह रहे थे, लेकिन दिल के दरिया सूख गए थे। इसलिए पानी था और नहीं भी था।

फिर आज़ादी की रात आई। दीवाली पर भी इतनी रोशनी नहीं होती, क्योंकि दिवाली पर तो दिये जलते हैं, यहाँ घर जल रहे थे। दीवाली पर आतिशबाजी होती है। और यहाँ बम फट रहे थे, मशीनगनें चल रही थीं। अंग्रेजों के राज्य में एक पिस्तौल भी भूले से कहीं नहीं मिलता था और आजादी की पहली ही रात न जाने कहाँ से यह इतने सारे बम, हैंडग्रेनेड, मशीनगन, ब्रेनगन, स्टेनगन टपक पड़े। यह हथियार ब्रिटिश और अमरीकी कंपनियों के बनाए हुए थे और आज आजादी की रात हिन्दुस्तानियों और पाकिस्तानियों के दिलों को छेद रहे थे।

लड़े जाओ बहादुरो, मरे जाओ बहादुरो, हम हथियार तैयार करेंगे, तुम लड़ोगे। शाबाश बहादुरो, देखना कहीं हमारे गोले-बारूद के कारखानों का मुनाफ़ा कम न हो जाए। घमासान का युद्ध रहे तो मजा है। चीन वाले लड़ते हैं तो हिन्दुस्तान और पाकिस्तान वाले क्यों न लड़ें। वह भी एशियाई हैं, तुम भी एशियाई हो। एशिया की इज्जत डूबने न पाए। लड़ते जाओ बहादुरो, तुमने लड़ना बन्द कर दिया तो एशिया का रुख दूसरी तरफ पलट जाएगा और फिर हमारे कारखानों के मुनाफे और हिस्से और हमारी साम्राजी खुशहाली संकट में पड़ जायगी। लड़े जाओ बहादुरो। पहले तुम हमारे मुल्क से कपड़े, शीशे का सामान और इत्र वगैरह मँगाया करते थे, अब हम तुम्हें अस्त्र-शस्त्र भेजेंगे—बम, हवाई जहाज और कारतूस—क्योंकि अब तुम आजाद हो गए हो।

सशस्त्र हिन्दू और सिखों के जत्थे मुसलमानों के घरों को आग लगा रहे थे और जय के नारे गूँज रहे थे। मुसलमान अपने घरों में छिप कर हमला करनेवालों पर मशीनगनों से हमला कर रहे थे और हैंडग्रीनेड फेंक रहे थे।

आजादी की रात और दूसरे तीन-चार दिन बाद तक इस तरह मुकाबला होता रहा। फिर सिखों और हिन्दुओं की मदद के लिए आसपास की रियासतों के जत्थे पहुँच गए। मुसलमानों ने अपने घर खाली करने शुरू कर दिये। घर, मोहल्ले, बाजार, जल रहे थे। हिन्दुओं के घर और मुसलमानों के घर और सिखों के घर। लेकिन आखिर में मुसलमानों के घर सब से ज्यादा जले। और हजारों की संख्या में मुसलमान जमा होकर शहर से भागने लगे। इस अवसर पर जो कुछ हुआ उसे इतिहास में अमृतसर का कत्ल कहा जायगा।

लेकिन मिलिटरी ने स्थिति पर जल्द काबू पा लिया। कत्ल आम बन्द हुआ और हिन्दू और मुसलमान दो अलग अलग कैम्पों में बन्द होकर रेफ्यूजी कहलाने लगे। हिन्दू 'शरणार्थी' कहलाते थे और मुसलमान 'पनाहगुज़ीं'। हालाँकि मुसीबत दोनों पर एक ही थी, लेकिन नाम उनके अलग-अलग कर दिये गए थे जिससे मुसीबत में भी ये दोनों एक जगह न मिल सकें। दोनों कैम्पों पर न छत थी, न रोशनी का इन्तजाम था, न सोने के लिए बिस्तर थे, न पाखाने, लेकिन एक कैम्प हिन्दू और सिख शरणार्थियों का कैम्प कहलाता था और दूसरा मुसलमान महाजरीन का!

हिन्दू शरणार्थियों के कैम्प में आजादी की रात को तेज बुखार में लरज़ती हुई एक माँ अपने बीमार बेटे के सामने दम तोड़ रही थी। ये लोग पश्चिमी पंजाब से आये थे। पन्द्रह आदमियों का खान्दान था। पाकिस्तान से हिन्दुस्तान आते-आते सिर्फ दो जने रह गये थे। अब उनमें से भी एक बीमार था दूसरा दम तोड़ रहा था।

पन्द्रह आदमियों का यह काफिला जब घर से चला था तो इनके पास

बिस्तर थे, खाने-पीने का सामान था, कपड़ों से भरे हुए ट्रंक थे, रुपये की पोटलियाँ थीं, औरतों के बदन पर जेवर थे और लड़के के पास एक बाइ-सकिल भी थी और यह सब पन्द्रह आदमी थे।

गुजराँवाले तक पहुँचते-पहुँचते दस रह गये। पहले रुपया गया, फिर जेवर, फिर औरतों के जिस्म!

लाहौर आते-आते छ आदमी रह गये। कपड़ों के ट्रंक गये और बिस्तर भी और लड़के को अपनी बाइसकिल छिन जाने का बहुत दुःख था।

और जब मुगलपुरा से आगे बढ़े तो सिर्फ दो रह गये थे—माँ और एक बेटा, और एक लिहाफ जो दम तोड़ती हुई औरत जूड़ी के बुखार में इस वक्त ओढ़े हुए थी। इस वक्त, आधी रात के वक्त, आजादी की पहली रात को वह औरत मर रही थी और उसका बेटा चुपचाप उसके सिरहाने बैठा हुआ बुखार से काँप रहा था और उसकी घिग्घी बँधी हुई थी और आँसू एक मुद्दत हुई खत्म हो चुके थे।

और जब उसकी माँ मर गई तो उसने धीरे से लिहाफ को उसके बदन से अलग किया और उसे ओढ़कर कैंप के दूसरे कोने में चला गया।

थोड़ी देर के बाद एक स्वयंसेवक उसके पास आया और उससे कहने लगा—"वह......उधर.......तुम्हारी माँ थी जो मर गई है?"

"नहीं नहीं, मुझे कुछ मालूम नहीं, वह कौन थी?" लड़के ने डर के मारे कहा और जोर से लिहाफ को अपनी गरदन के चारों ओर लपेटता हुआ बोला—"वह मेरी माँ नहीं थी, यह लिहाफ मेरा है। मैं यह लिहाफ नहीं दूँगा। यह लिहाफ मेरा है।"

वह जोर-जोर से चीखने लगा—"वह मेरी माँ नहीं थी। यह लिहाफ मेरा है। मैं इसे किसी को न दूँगा। यह लिहाफ मैं साथ लाया हूँ। नहीं दूँगा नहीं!"

एक लिहाफ, एक माँ, एक मुर्दा इन्सानियत—किसे मालूम था कि एक दिन इस नये पतन की कहानी भी मुझे आपको सुनानी पड़ेगी !

जब मुसलमान भागे तो उनके घर लुटने शुरू हुए। शायद ही कोई शरीफ आदमी रहा हो जिसने इस लूट में हिस्सा न लिया हो !

आजादी के तीसरे दिन का जिक्र है। मैं अपनी गाय को गली के बाहर नल पर पानी पिलाने ले जा रहा था। बाल्टी मेरे हाथ में थी। दूसरे हाथ में गाय के गले से बँधी हुई रस्सी थी। गली के मोड़ पर पहुँच कर मैंने म्युनिस्पैल्टी के लैम्प वाले खम्भे से गाय को बाँध दिया और नल की ओर बाल्टी लिये मुड़ गया कि पानी भर लाऊँ। थोड़ी देर बाद जब बाल्टी भर कर लाया तो देखता हूँ कि गाय गायब है। इधर-उधर बहुतेरा देखा लेकिन गाय कहीं नजर न आई। एकाएक मेरी निगाह साथ वाले मकान के आंगन में गई। देखता हूँ तो गाय आंगन में बँधी खड़ी है।

मैं घर में घुसा।

"क्या है भई, कौन हो तुम ?" एक सरदार साहब ने बहुत ही रुखाई के साथ कहा।

मैंने कहा—"मैं अभी गाय को बाँधकर नल पर पानी लेने गया था। यह गाय तो मेरी है, सरदार जी।"

सरदार जी मुसकराये—"हला-हला, कोई गम नहीं। मैंने समझा किसी मुसलमान की गाय है। यह आपकी है तो फिर ले जाइये।"

यह कह, गाय की रस्सी खोल, उन्होंने मेरे हाथ थमा दी।

"माफ करना," मेरे चलते-चलते उन्होंने फिर कहा—"आपाँ समझ्या कि किसी मुसलमान की गाय है।"

मैंने यह घटना अपने मित्र सरदार सुंदर सिंह से बताई तो वह बहुत हँसा।

"भला इसमें हँसने की क्या बात है ?" मैंने उससे पूछा तो वह और भी जोर से हँसने लगा।

सुंदरसिंह, मैं आपको बता दूँ, साम्यवादी है। इसलिए साम्प्रदायिकता से बहुत दूर रहता है। मेरे उन चन्द दोस्तों में से है जिन्होंने इस लूट-मार में बिल्कुल हिस्सा नहीं लिया।

मैंने कहा—"तुम इसे अच्छा समझते हो ?"

वह बोला—"नहीं, यह बात नहीं है। मैं हँस रहा था, क्योंकि ऐसी ही घटना आज सुबह मेरे साथ भी हुई। मैं हाल बाजार में से गुजर रहा था कि मैंने सोचा, सामने कटरे में सरदार सवेरासिंहजी को देखता चलूँ। पुराने गदर पार्टी के लीडर हैं न वह। उन्होंने अपने गाँव में तीन-चार सौ मुसलमानों को शरण दे रखी है। सोचा, पूछता चलूँ, उनका क्या हुआ। उन्हें वहाँ से निकाल कर महाजरीन कैम्प में ले जाने की क्या तरकीब की जाए।"

यह सोच कर मैंने अपनी गाड़ी मोहम्मद रजाक जूते वाले की दुकान (जो अब लुट चुकी है) के आगे खड़ी की और कटरे में घुस गया। कुछ मिनट के बाद ही लौटकर आ गया क्योंकि बाबाजी घर पर मिले नहीं, आकर देखता हूँ तो गाड़ी गायब है। अभी तो यहीं छोड़ी थी। पूछने पर भी किसी ने कुछ नहीं बताया। इतने में मेरी नजर हाल बाजार के आखिरी कोने पर पड़ी। वहाँ मेरी गाड़ी खड़ी थी। लेकिन एक जीप के पीछे बँधी हुई।

मैं भागा-भागा वहाँ गया। सरदार......सिंह मशहूर राष्ट्रीय कार्यकर्ता जीप में बैठे हुए थे। मैंने पूछा—कहाँ जा रहे हो ?

"अपने गाँव जा रहा हूँ।"

"और यह मोटर भी क्या तुम्हारे गाँव जाएगी !"

"कौनसी मोटर ?—यह जो पीछे बँधी हुई है ? यह तुम्हारी मोटर है ! माफ करना प्यारे, मैंने पहचानी नहीं। यह मोहम्मद रजाक की दुकान के सामने खड़ी थी न, मैंने सोचा कि मुसलमान की होगी। मैंने जीप के

पीछे बाँध लिया। हा-हा-हा, मैं तो इसे अपने घर लिये जा रहा था। अच्छा हुआ, तुम वक्त पर आ गए।"

"और अब कहाँ जाओगे?" मैंने अपनी मोटर खोलकर उसमें बैठते हुए कहा।

"अब.......? अब कहीं और जाऊँगा। कहीं न कहीं से कोई माल मिल ही जाएगा।"

सरदार...सिंह राष्ट्रीय कार्यकर्ता हैं। जुरमाने अदा कर चुके हैं, राजनीतिक आजादी के लिए कुरबानियाँ कर चुके हैं!"—यह घटना सुनाकर सुन्दरसिंह ने कहा—यह बीमारी इस हद तक फैल चुकी है कि हमारे अच्छे-अच्छे राष्ट्र सेवक भी इससे नहीं बचे। हमारी राजनीतिक पार्टियों में काम करने वाले वर्ग का एक भाग खुद इस लूट-मार कत्ल व गारतगरी में शामिल है। इस बाढ़ को अगर इसी वक्त नहीं रोका गया तो दोनों पार्टियाँ फासिस्ट हो जाएँगी—यही कोई दो-चार साल में!"

सुन्दरसिंह का चेहरा चिन्तित दिखाई दे रहा था। मैं वहाँ से उठकर चला आया। रास्ते में खालसा कालेज रोड पर एक मुसलमान अमीर की कोठी लूटी जा रही थी। सामान से लदे हुए छकड़े भिन्न गिरोह ले जा रहे थे। मेरे देखते-देखते कुछ ही मिनटों में सब मामला खत्म हो गया। सड़क पर चलने वाले हिन्दू और सिख राहगीर भी कोठी की तरफ भागे, लेकिन पुलिस के सिपाहियों को वहाँ से निकलते हुए देखकर ठिठक गये।

पुलिस के सिपाहियों के हाथों में कुछ जुराबें थीं और रेशमी टाइयाँ। एक कोट-हैंगर पर मफलर पड़ा हुआ था। उन्होंने मुसकरा कर लोगों से कहा—"अब कहाँ जाते हो। वहाँ तो पहले ही सब कुछ खत्म हो चुका है।"

एक महाशय जो शक्ल सूरत से आर्यसमाजी मालूम होते थे और मेरे सामने ही कोठी की तरफ भागे थे, अब मुड़ कर मेरी तरफ देख कर कहने लगे—"देखिये साहब, दुनिया कैसी पागल हो गई है।"

मेरे पास से एक दूध वेचने वाला गुज़रा। वेचारे के हिस्से में कुछ किताबें आई थीं। वह उन्हें उठाकर लिये जा रहा था।

मैंने पूछा—"इन किताबों को क्या करोगे?—पढ़ सकते हो?"

"न बाबूजी!"

"फिर?"

उसने किताबों की तरफ गुस्से से देखा। फिर बोला—"हम का करें बाबू, जिधर जाते हैं, लोग पहले ही अच्छा-अच्छा सामान उठा ले जाते हैं। हमारी तो किसमत खराब है बाबू!"

उसने फिर किताबों को गुस्से से देखा। उसका इरादा था, इन्हें यहीं सड़क पर फेंक दे। फिर उसका इरादा बदल गया। वह मुसकराकर कहने लगा—"कोई बात नहीं। यह मोटी-मोटी किताबें हैं। चूल्हे में खूब जलेंगी। रात के भोजन के लिए लकड़ियों की जरूरत नहीं।"

बड़ी अच्छी किताबें थीं। सब चूल्हे में गईं—अरस्तू, सुकरात, अफ़लातून, रूसो, शेक्सपियर—सब चूल्हे में गए!

तीसरे पहर के करीब बाज़ार सुनसान पड़ने लगे। कर्फ्यू होने वाला था। मैं जल्दी-जल्दी कूचे रामदास से निकला और गुरुद्वारे के सामने सिर नवाता हुआ अपने घर की ओर बढ़ गया। रास्ते में अँधेरी गली पड़ती थी जहाँ जलियाँवाले बाग के रोज़ लोगों को घुटने के बल चलने के लिए मजबूर किया गया था। मैंने सोचा, इस गली से क्यों न निकल जाऊँ। यह रास्ता ठीक रहेगा।

मैं इस गली की ओर घूम गया।

यह गली तङ्ग है और यहाँ दिन को भी अँधेरा-सा रहता है। यहाँ मुसलमानों के आठ-दस घर थे। वे सब के सब या जलाए गये थे या लूटे गए थे। दरवाज़े खुले थे, खिड़कियाँ टूटी हुई थीं, कहीं-कहीं छतें जली हुई थीं। गली में सन्नाटा था, गली के फ़र्श पर औरतों की लाशें पड़ी हुई थीं।

मैं पलटने लगा। इतने में किसी के कराहने की आवाज़ आई। गली के बीच में लाशों के ढेर में से एक बुढ़िया रेंगने की कोशिश कर रही थी। मैंने उसे सहारा दिया।

"पानी बेटा!"

मैं ओक में पानी लाया। गुरुद्वारे के सामने पानी का नल था।

"तुम पर खुदा की रहमत हो बेटा। तुम कौन हो;—खैर, तुम कोई भी हो, तुम पर खुदा की रहमत हो, बेटा। यह एक मरनेवाली के बोल हैं। इन्हें याद रखना बेटा!"

मैंने उसे उठाने की कोशिश करते हुए कहा—"तुम्हें कहाँ चोट आई है, माँ?"

बुढ़िया ने कहा—"मुझे मत उठाओ। मैं यहीं मरूँगी, अपनी बहू-बेटियों के बीच। क्या कहा तुमने, कहाँ चोट आई है—चोट, अरे बेटा, यह चोट बहुत गहरी है। यह घाव दिल के अन्दर है। बहुत गहरा घाव है। तुम लोग इससे कैसे पनप सकोगे। तुम्हें खुदा कैसे माफ़ करेगा?"

"हमें माफ़ कर दो माँ!"

मगर बुढ़िया ने कुछ नहीं सुना। वह आप ही कहती जा रही थी—"पहले उन्होंने हमारे मर्दों को मारा, फिर हमारे घर लूटे, फिर हमें घसीटकर गली में लाए और इस गली में, इस फर्श पर, इस पवित्र गुरुद्वारे के सामने जिसे मैं हर रोज़ सिर झुकाया करती थी, उन्होंने हमारी अस्मतदरी की और फिर हमें गोली से मार दिया। मैं तो उनकी दादियों की उम्र की थी। उन्होंने मुझे भी माफ़ नहीं किया!"

एकाएक मुझे उसने आस्तीन से पकड़ लिया—"तू जानता है, यह अमृतसर का शहर है, यह मेरा शहर है। इस मुकद्दस गुरुद्वारे को मैं रोज़ सलाम करती थी जैसे अपनी मसजिद को सलाम करती हूँ। मेरी गली में हिन्दू, मुसलमान, सिख सभी बसते थे। और कई पीढ़ियों से हम लोग

यहाँ बसते चले आ रहे हैं। हम सदा मोहब्बत, सुलह और प्यार से रहे और कभी कुछ नहीं हुआ।"

"मेरे मज़हबवालों को माफ़ करो माँ!"

"तू जानता है, मैं कौन हूँ? मैं ज़ैनब की माँ हूँ। तू जानता है, ज़ैनब कौन थी? ज़ैनब वह लड़की थी जिसने जलियाँवाले रोज़ इस गली में गोरे के आगे सिर नहीं झुकाया, जो अपने मुल्क और कौम के लिए सिर ऊँचा किए इस गली से गुजर गई। यही वह जगह है जहाँ ज़ैनब शहीद हुई थी।

"मैं उसी ज़ैनब की माँ हूँ। मैं इतनी आसानी से तुम्हारा पीछा छोड़ने वाली नहीं हूँ। मुझे सहारा दो। मुझे खड़ा कर दो। मैं अपनी लुटी हुई आबरू और अपनी बहू-बेटियों की बरबाद अस्मतें लेकर लीडरों के पास जाऊँगी, मुझे सहारा दो। मैं उनसे कहूँगी, मैं ज़ैनब की माँ हूँ। मैं अमृतसर की माँ हूँ। मैं पञ्जाब की माँ हूँ।—तुमने मेरी गोद उजाड़ी है। तुमने बुढ़ापे में मेरा मुँह काला किया है। मेरी जवान-जवान बहुओं व बेटियों की पाक-साफ़ रूहों को जहन्नुम की आग में झोंका है। मैं उनसे पूछूँगी, क्या ज़ैनब इसी आज़ादी के लिए कुरबान हुई थी? मैं—ज़ैनब की माँ!"

एकाएक वह मेरी गोद में झुक गई। उसके मुँह से खून उबल पड़ा और दूसरे ही क्षण उसने जान दे दी।

ज़ैनब की माँ मेरी गोद में मरी पड़ी है और उसका लहू मेरी कमीज़ पर है और मैं ज़िन्दगी से मौत के दरवाजे तक झाँक रहा हूँ और मेरी कल्पना में सदीक़ और ओमप्रकाश उभरते चले आते हैं और ज़ैनब का सिर गर्वीले ढंग से उभरता चला आता है और शहीद कहते हैं कि हम फिर आएँगे। सदीक़ ओमप्रकाश—हम फिर आएँगे—शाम कौर, ज़ैनब, पारो, बेगम—हम फिर आएँगे—अपने बलिदान का ओज लिये हुए, अपनी बेदाग रूहों की महानता लिये हुए, क्योंकि हम इन्सान हैं। हम इस सारी

सृष्टि में सृजन के झंडाबरदार हैं और कोई सृजन को मार नहीं सकता, कोई उसकी अस्मतदरी नहीं कर सकता, कोई उसे लूट नहीं सकता; क्योंकि हम सृजन हैं और तुम विनाश हो, तुम वहशी हो, तुम दरिन्दे हो,—तुम मर जाओगे, लेकिन हम नहीं मरेंगे, क्योंकि इन्सान कभी नहीं मरता, वह दरिन्दा नहीं है, वह नेकी की रूह है, खुशी का निचोड़ है, विश्व का गौरव है।

दूसरी मौत

शिवाजी पार्क बम्बई की विशेषताओं में से है, उसके देखने योग्य स्थानों में से है। गो शुरू में यह बात आसानी से समझ में नहीं आती कि यहाँ कौनसी चीज देखने योग्य है। इमारतें?—इमारतें तो बम्बई में चारों तरफ हैं। नफीस फ्लैट?—वह तो मेरीन ड्राइव पर जाकर देखिए जहाँ एक फ्लैट के लिए पचीस हजार की पगड़ी देनी पड़ती है। नारियल के दरख्त?—वह भी जुहू पर हजारों की संख्या में नजर आएँगे, शिवाजी पार्क में तो टीले ही टीले नजर आते हैं। समन्दर?—भई, समन्दर तो बम्बई के चारों तरफ है, इसमें शिवाजी पार्क ही की क्या विशेषता है। कुछ समझ में नहीं आता कि इसे क्यों इतना महत्त्व दिया गया है।

दर असल यह बात इतनी जल्दी समझ में आनेवाली नहीं है। इसके लिए शिवाजी पार्क में रहना जरूरी है। और कोई दो-चार महीने रहने से काम नहीं चलेगा, बरसों तक स्थायी रूप से रहना चाहिये। तब जाकर कहीं इस देखने-जानने योग्य विशेषता का पता चल सकेगा।

मिसाल के लिए, मेरे यहाँ आकर रहने के पहले छ महीनों में मुझे यह भी पता नहीं चल सका कि मेरे फ्लैट के बिल्कुल ऊपर, दूसरे फ्लैट में, शराब की भट्ठी है। मिस्टर म्योशो जो ऊपर के फ्लैट में रहते थे, माहिर

बटनसाज थे और सिंधी कारखानेदार की बटन फैक्टरी में काम करते थे। जब वह पकड़े गये तो अचानक ही हमें पता चला कि वह केवल बटनसाजी में ही उस्ताद नहीं थे, शराब बनाने में भी कमाल करते थे। उनकी भट्टी में खिंची शराब जायके, रंगत और नशे में मशहूर फ्रांसीसी शराबों को भी मात करती थी। लेकिन यह सब कुछ हमें बाद में मालूम हुआ। पहले छ महीने तो हम उन्हें बटनसाजी का ही माहिर समझते रहे।

मिस्टर रमोलो बड़े हँसमुख, मिलनसार आदमी थे। अक्सर उतरते-चढ़ते बिल्डिंग की सीढ़ियों पर उनसे भेंट हो जाती थी और कई-कई मिनट तक उनसे हैदराबाद के मीनाकारी के और कानपुर के चमड़े के बटनों पर बात होती रहती थी। फिर उनका नाम कितना अच्छा था—रमोलो...... रमोलो......जुबान पर किस खूबी के साथ घूमता है,—रमोलो, रमोलो—कितनी घुलावट है इस नाम में, लखनऊ की मलाई का सा मजा आता है!

इसी शिवाजी पार्क में मेरे एक और दोस्त रहते हैं। नाम है ख्वाजा मशहद नब्वाज़। नाम सुनकर ऐसा मालूम होता है मानो कोई घोड़ा कच्चे शलगम चबा रहा है। भला आप ही बताइए, ऐसे नाम का आदमी इस दुनिया में क्या तरक्की कर सकता है। खैर, तो जिक्र मिस्टर रमोलो का हो रहा था। जब वह नाजायज शराब खींचने के अपराध में पकड़ा गया तो मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। मेरे एक और दोस्त हैं जो इसी बिल्डिंग में रहते थे। इस साल वह फ्रांस में रह आए थे। बहुत ही खुश तबीयत के आदमी थे। मोटर गाड़ी भी रखते थे। कभी-कभार जब मेरे संबन्धी गाँव से बम्बई की सैर के लिए आते तो उनसे गाड़ी माँग लेता था। वह इम्पोर्ट-एक्सपोर्ट के व्यापारी थे। फीरोजशाह मेहता रोड पर उनका दफ्तर था। मिस्टर रमोलो की गिरफ्तारी पर वह हँस कर फरमाते—"भई कुछ भी हो, रमोलो ब्रांड की शराब का जवाब बम्बई में नहीं है। उसे चख कर पेरिस की गलियाँ याद आ जाती हैं, और फ्रांसीसी कुँवारी का बदन जो,

अब पेरिस में भी दुर्लभ होता जा रहा है, आँखों के आगे घूमने लगता है।"

"मगर," मैंने अपने दोस्त से कहा—"मैं तो समझता था कि वह बटन......"

उन्होंने बात काटते हुए कहा—"तुम निरे चुगद हो। अरे मियाँ, यह शिवाजी पार्क है। यहाँ हर आदमी दो काम जरूर करता है—एक सफेद मार्केट का, एक ब्लैक मार्केट का। सफेद मार्केट में पैसा नहीं है। पैसा तो सिर्फ ब्लैकमार्केट से मिलता है। रमोलो की शराब मलाबार हिल पर जाती थी, बड़े-बड़े अमीर घरानों में। बम्बई के पुलिस कमिश्नर ने अक्सर दावतों में इस शराब को चखा है। क्या बात करते हो!"

जब पुलिस मिस्टर रमोलो को ले गई तो मुझे बड़ा दुःख हुआ। मेरे दोस्त कहने लगे—"अमाँ, क्यों अफसोस करते हो। वह बड़ा पितरती और काइयाँ है। दूर तक उसकी पहुँच है। देखना, बहुत जल्द छूट जायगा।"

ऐसा ही हुआ भी। कुछ दिन बाद मैंने मिस्टर रमोलो को हँसते-खेलते वापिस आते देखा। मगर अब वह शिवाजी पार्क का फ्लैट छोड़ रहे थे। दस हजार की पगड़ी पर उन्होंने अपना फ्लैट एक सिंधी शरणार्थी को दे दिया था जो बेचारा अपनी जान बचा कर बम्बई भाग आया था। उसे अपने डाल्मेशियन कुत्ते का बहुत अफसोस था जो कराची में ही छूट गया था। बीवी-बच्चे, जेवर-दौलत, सब कुछ वह ले आया था; मगर उसके मकान, उसका कारखाना, उसका बाग वहीं रह गया था। पर इन चीजों का उसे इतना अफसोस नहीं था जितना डाल्मेशियन कुत्ते का जो गल्ती से कराची में रह गया था। उसने अपने मुसलमान दोस्तों को कई तार दिये, लेकिन वे लोग इतने कट्टर पाकिस्तानी थे कि उन्होंने बेचारे का कुत्ता वहीं रख लिया। बड़ा खूबसूरत कुत्ता था वह,—सफेद सुर्ख, जिस्म पर चित्ते-चित्ते दाग, जैसे नये फैशन की साड़ियों

होती हैं न, बस उसका प्यारा डाल्मेशियन भी उसी डिज़ाइन का था। जालिम पाकिस्तानियों ने हथिया लिया और हमारी सरकार है कि ऐसे शरणार्थियों के लिए कुछ भी नहीं करती।

यह बात कि शिवाजी पार्क में हर आदमी दो काम करता है, मुझे जंची नहीं,—और जंची भी तो उस वक्त जब मेरे दोस्त खुद लड़कियों की खरीद-बेच के सिलसिले में पकड़े गए। बाद में यह राज़ खुला कि उनका इम्पोर्ट-एक्सपोर्ट का दफ्तर भी जो फीरोजशाह रोड पर था, दर असल लड़कियों की इम्पोर्ट-एक्सपोर्ट का काम करता था। यह काम गरीब शरणार्थियों की आमद से और भी बढ़ गया था।

इन्हीं दिनों मेरे दोस्त ने एक नयी डेमलर खरीदी थी और इसमें अकसर खूबसूरत लड़कियों को ड्राइव के लिए ले जाया करते थे। मगर वे लड़कियाँ तो इतनी फैशनेबिल थीं कि मुझे कभी अन्दाज ही नहीं हुआ कि इनकी भी इम्पोर्ट-एक्सपोर्ट होती है। इस कदर हाई क्वालिटी का माल होता था कि पुलिस की निगाह भी चूक जाती थी, और फिर बड़े बड़े दोस्त थे मेरे दोस्त के।

उनके फ्लैट में मेरी मुलाकात नवाब आखिर घसियारा के साथ हुई, मिस्टर जी हुजूरी के साथ हुई, मौलाना शर्फ उल्लाह से हुई, सेठ दलपत चौवाड़िया से हुई। कौन लोग थे वह ? हरेक के पास पन्द्रह-बीस बिल्डिंगें आठ-दस गाड़ियाँ, पाँच-सात प्रेमिकाएँ और दो-चार राजनीतिक नेता थे ! और जब मैं अपने दोस्त से कहता—'भई, तुम बड़े बारसूख हो। एकाध बेजीनेस हमें भी करा दो !' तो वह अपने मोटे सिगार की राख झाड़ते हुए कहते—'अरे भई, तुम क्या जानो, इस बिजीनेस में कितनी परेशानी है।"

अब पता चला जब पुलिस उन्हें गिरफ्तार करके ले गई कि इसमें कितनी परेशानी है। सुना है कि लड़की जो एक्सपोर्ट की गई, वह सिर्फ

तेरह साल की थी। उसके मा-बाप ने उसे पन्द्रह सौ में बेच दिया था। मेरे दोस्त ने एक रियासत में उसे सात हजार रुपये पर एक्सपोर्ट कर दिया। किसी ने बीच में कमीशन ज्यादा माँगा और मेरे दोस्त ने नहीं दिया। उसने पुलिस में जाकर इत्तला कर दी। और आप जानिये, पुलिस तो ऐसे मामलों की ताक में रहती है। बेचारे शरीफ आदमी को गिरफ्तार कर लिया।

ऐसी घटनाएँ शिवाजी पार्क में होती रहती हैं। मेरा एक दोस्त था भण्डारी। बेचारा कराची से बिजीनेस के लिए आया था। यहाँ एक गुजराती लड़की से इश्क कर बैठा और बिजीनेस के बजाय उसने लड़की की उदासीनता से तंग आकर जहर खा लिया। आप उस लड़की को देखें तो जहर तो जहर मिठाई भी नहीं खाई जा सकती। मगर दिल ही तो है।

शिवाजी पार्क में कारखानेदार रहते हैं और करखन्दार भी, सेठ लोग भी और सेठियों के गुलाम भी। कहीं कहीं फिल्म-ऐक्टर भी नजर आ जाते हैं।

"वह घर देखा है तुमने,—जहाँ पर श्री घोष रहते हैं?"

"श्री घोष! सचमुच?"

"हाँ।"

"वही श्री घोष जिन्होंने चिड़ियों का रुक्का, चोर का मोर और गांधी के [illegible]ल में काम किया है।"

"हाँ।"

"कमाल है भई। वह छोटा-सा मकान उनका है?"

"और वह जो मकान है जिसके बाहर [illegible] हैं, वहाँ मिस इन्सान नाचती रहती है।"

"इन्सान नाचती?"

"नाचती नहीं, नाचिए!"

"दमसाज़ लान्ति ! झूठ तो नहीं बोलते। वही दमसाज़ लान्ति जो बदकिस्मत, मन की फुहार और मैं कैसे चिकूँ की हीरोइन है।"

"वही ! वही !"

"भई यकीन नहीं आता, इतनी बड़ी हीरोइन यहाँ रहती है !"

"यकीन न आता हो तो उस भंगिन से पूछ लो।"

"कमाल कर दिया भई।"

"क्या समझते हो, यह शिवाजी पार्क है।" मेरा गाइड जवाब देता है।

अब मुझे यहाँ रहते छः साल हो गए हैं। अब मैं कह सकता हूँ कि शिवाजी पार्क वाकई देखने लायक जगह है। यहाँ फ़िल्मी दुनिया के बढ़िया-से-बढ़िया हीरो और हीरोइन मौजूद हैं, बड़े-बड़े सेठ और कारखानेदार, अखबारों के मालिक और बड़े-बड़े जर्नलिस्ट जिनकी कलम का लोहा दुनिया मानती है—और फिर मामूली लोग भी रहते हैं,—धोबी, नाई, क्लर्क, साहित्यिक, मिठाई बेचने वाले, कुँजड़े, ड्राइवर, बेटर, पानवाले, फूलवाले, नारियलवाले, दही-बड़े की चाटवाले,—मामूली लोग जिनमें वेश्याएँ भी शामिल हैं !

शिवाजी पार्क इन्सानों की दूसरी बस्तियों की तरह ही एक और आबादी है। इस आबादी में हिन्दू ज्यादा हैं; मुसलमान कम,—यों समझिए कि सौ में से पचानवे तो हिन्दू होंगे और पाँच मुसलमान; हिन्दुओं में सत्तर मरहठे होंगे और बीस गुजराती, बाकी पाँच फ़िल्म-ऐक्टर समझिए। मरहठे आम तौर से मध्य या निम्न मध्य वर्ग की सन्तान हैं; गुजराती अमीरों के वर्ग में स्थान रखते हैं और जो फ़िल्म-ऐक्टर हैं वह इन दोनों वर्गों के बीच में गुजरते रहते हैं,—कभी यहाँ, कभी वहाँ। युद्ध के जमाने में ये लोग लाखों कमाते थे। युद्ध के बाद लाखों गँवा दिये इन्होंने और आज कल, बेकारी के जमाने में, हिन्दू सेवक संघ में नाम लिखा लिया है और हिन्दू धर्म से 'प्रेम' करने लगे हैं। युद्ध के जमाने में ये वेश्याओं से 'प्रेम' करते थे।

कभी-कभी गौर करता हूँ तो अपनी सारी जिन्दगी—निजी, व्यक्तिगत, कौमी—इम्पोर्ट-एक्सपोर्ट के उसूल पर चलती हुई मालूम होती है!

शिवाजी पार्क में सभी तरह के लोग हैं। मगर फिर भी छः साल से देख रहा हूँ कि लोग अपने फ्लैटों में आराम से रहते हों या दुःख से रहते हों, शराफत से जरूर रहते हैं क्योंकि इन्सान की बिरादरी के हजारों लोग गुंडागिरी के उसूल पर किसी बस्ती को ज्यादा देर तक नहीं चला सकते। इसीलिए बच्चे आसानी से गलियों से गलियों में घूमते हैं, औरतें आजादी से पार्क में सैर करती हैं, दुकानों पर सौदा-सुलुफ खरीदती हैं, मर्द दफ्तरों कारखानों और दुकानों में कार्य करते हैं और शाम को, एक धोती और कमीज पहने हुए, समन्दर के किनारे आते और गलगप उड़ाते हैं। नन्हें-नन्हें खिलौनों की नन्हीं-नन्हीं हरकतें, और करीब ही समन्दर की घन-गरज गूँज चारों पहर सुनाई देती है और इन्सान की छोटी-छोटी खुशियों के लिए बैकग्राउंड म्यूज़िक का काम देती है। कभी संगीत है तो कभी गरज है, कभी खतरा है तो कभी खुशी है, समन्दर की गूँज हर आन, इन्सान के सुख और दुःखों के साथ बदलती रहती है और शिवाजी पार्क की आबादी इस गूँज में अपने ढंग के सुर ढूँढती रहती है।

[२]

शिवाजी पार्क में मेरे बसने के छठवें साल एक तूफ़ान उठा। यह तूफ़ान बहुत दूर से आया था। यों समन्दर शिवाजी पार्क के बहुत करीब है, लेकिन यह तूफ़ान इस समन्दर में नहीं आया था; यह तूफ़ान बहुत दूर से,—आज से एक सौ साल दूर पीछे से,—आया था।

यह तूफ़ान मेरठ से शुरू हुआ और पन्द्रह अगस्त को सारे हिन्दुस्तान में फैल गया। मानवी इतिहास के इस तूफ़ान ने हर हिन्दुस्तानी के घर की चूलें हिला दीं और कभी न कभी उसकी रूह में, उसके बदन में, उसके

जेहन में, उसके आचार-विचार में, उसकी जिन्दगी में, कोई न कोई इन्क-लाब जरूर पैदा कर दिया।

यह बड़ा भारी तूफ़ान था जो सदियों के बाद ही इन्सानों की जिन्दगी में आता है। तो इसे शुरू हुए एक सौ साल से ज्यादा समय नहीं हुआ था;—कई लोग कहते हैं कि यह तूफ़ान नहीं था, दो तूफ़ानों की टक्कर थी;—एक तूफ़ान जो एक सौ साल पीछे शुरू हुआ था और दूसरा तूफ़ान जो उसके कहीं पहले मनुस्मृति की वर्णव्यवस्था से शुरू हुआ। सैकड़ों साल पहले वह व्यवस्था जो बुद्ध के उत्थान का कारण बनी, जिसने इस-लाम को विकसित होने का अवसर दिया, जिसने अछूत पैदा किए, आज पाकिस्तान को जन्म दे रही थी। बिला शुबह यह दो तूफ़ानों की टक्कर थी। राष्ट्रीयता का प्रवाह और वर्ण व्यवस्था का कृतित्व। राष्ट्रीयता का सैलाब आजादी लाया और वर्णों के कृतित्व ने पाकिस्तान को मूर्त किया, और अब दोनों तूफ़ान टकरा रहे थे। बिजली की कड़क, आंधी-तूफ़ान, गूंज-गरज, इन्सानी चीखें, खून की लहरें, बिजली जो घरों को जला गई, खेतों को जला गई, इन्सानों को जला गई। यह तूफ़ान उधर से आया जिधर से आर्य लोग आज से हजार साल पहले हिन्द में दाखिल हुए थे।

सरदार दोहत्तड़सिंह इसी तूफ़ान के रेले में बहता शिवाजी पार्क आ निकला था। दोहत्तड़सिंह लायलपुर का हथ-छुट किसान था, जिस्म व जान का मजबूत। उसके बाप-दादाओं ने लायलपुर की बंजर जमीन में अपनी मेहनत से बहार के फूल उगाए थे। वह लायलपुर का बूटा था, जिस तरह वहाँ का गेहूँ, वहाँ की रूई, वहाँ के पीलू लायलपुर के थे। जब एक बूटा अपने प्राकृतिक वातावरण, अपनी जल-वायु विशेष, अपनी जमीन से उखाड़ लिया जाए तो दूसरी जगह उसकी काश्त मुश्किल से होती है, इस मामूली बात को हर किसान अच्छी तरह समझता है। हमारे मुल्क को बांटने वाले भूल गए कि दोहत्तड़सिंह के कदम शिवाजी पार्क में नहीं जम सकते थे।

उसकी जड़ें शिवाजी पार्क की मिट्टी को कुबूल नहीं करती थीं। उसकी रगें मुरझाने लगी थीं। वह तन्दुरुस्त पौदा न था, बीमार पौदा था।

दोस्तसिंह की जमीन उसके पास न थी। बीवी लायलपुर के एक जांगली सरदार ने भगा ली थी,—उसकी आँखों के सामने और वह कुछ नहीं कर सका था। उसके मा-बाप उसके सामने मौत के घाट उतार दिये गए थे। फिर फौज की मदद पहुँच गई और वह बच गया। लेकिन किरपान उसके पहलू में हर वक्त बेचैन रहती थी। मेहनती किसान, माहिया और हीर गानेवाला किसान, हँसी-ठिठोली में डूबा रहनेवाला किसान खून का प्यासा बन गया।

उसने आते ही जब देखा कि शिवाजी पार्क में मुसलमान बड़े मजे से रहते हैं तो वह भौचक्का-सा रह गया। वह गली में से गुजर रहा था कि उसकी नजर एक पठान पर पड़ी जो मिस दमसाज लान्ति के मकान के बाहर खड़ा था। उसे बन्दूकी सिपाही याद आए जिन्होंने उसके गाँव पर हमला किया था। बिल्कुल अचानक उसने 'सतसिरी अकाल' का नारा बुलन्द किया और किरपान निकाल कर पठान को वहीं ठंडा कर दिया।

शिवाजी पार्क में हिन्दू-मुस्लिम दंगे की यह पहली घटना थी। पुलिस मौके पर आई, मगर मुजरिम का पता नहीं चला। उसी रात गुंडों ने एक कमेटी बुलाई, दोस्तसिंह की पीठ ठोंकी और फैसला किया कि शिवाजी पार्क से सारे मुसलमानों को खत्म कर दिया जाए। इस काम के लिए सरदार दोस्तसिंह को सब गुंडों का सरदार नियुक्त कर दिया गया।

दूसरी रात को सरदार दोस्तसिंह ने अपने साथियों की मदद से [illegible] मुसलमानों का कत्ल कर दिया। इनमें कई गुंडे थे और इस प्रकार के गुंडों के हटने से [illegible] हिन्दू गुंडों ने [illegible] लिया जाता है।

अमजद ने मरते-मरते कहा—"अरे धारकर, जिन्दगी-भर तेरा साथ रहा है। याद है जब हमने मिलकर सेठ दलपत की बेइज्जती की थी? जब सकरवानजी पारसी को समन्दर में डुबोया था? जब ईरानी होटल वाले को लूटा था? और-आज तू हम पर ही तलवार ले कर चढ़ आया है, दोस्त!'

धारकर ने परेशान होकर कहा—'क्या करूँ दोस्त, मजबूरी है। हिन्दू धर्म का मामला आन पड़ा है। वरना कोई बात नहीं थी।'

सतसिरी अकाल कहकर दोहत्तड़सिंह ने अमजद का सिर उड़ा दिया।

अगले रोज शिवाजी पार्क और उसके आस-पास के इलाके को मुसलमान खाली करने लगे। वही फ्लैट जो दस हजार पगड़ी पर भी नहीं मिल सकते थे, अब दो हजार पर जाने लगे। मोटरें जो पन्द्रह-सोलह हजार की मालियत की होंगी पन्द्रह सौ में बिकने लगीं। बिजली के पंखे, रेडिओ-ग्राम, हर महँगी चीज कौड़ियों मोल बिकने लगी!

यह सब सरदार दोहत्तड़सिंह के नेतृत्व का नतीजा था। अब गुजराती सेठ उसे हाथ जोड़कर नमस्कार करते थे। गुजराती सेठानियों ने उसके गले में हार पहनाए। अमजद की खूबसूरत मरहटा बीबी उसने अपने यहाँ रख ली और उसे अमृत चखा दिया। हर रोज शराब की बोतल उसके पास पहुँच जाती और सौ-पचास रुपये भी। अब वह सेठों की महफिल में रहता था, उनकी मोटरों में घूमता था और गली बाजारों में अकड़ कर ऐसे चलता था मानो शिवाजी पार्क का मालिक वही है!

अब दोहत्तड़सिंह के बदन से लायलपुर की सोंधी-सोंधी मिट्टी की बू नहीं आती थी। अब उसके जिस्म के जर्रे-जर्रे से लालच और खून की बू आती थी। अब उसकी जुबान पर माहिया और हीर के गाने नहीं थे, अब वह फिल्मों के बाजारू गीत गाता था। उसके हाथ में अब हल नहीं था, खंजर था।

दोहत्तड़सिंह मर गया था,—वह जो लायलपुर का किसान था। वह दोहत्तड़सिंह अब जिन्दा था जिसे दो तूफानों की टक्कर ने जन्म दिया था।

अब वह हिन्दू धर्म की इज्जत का रक्षक था और जिन लोगों ने उसके जरिये फ्लैट हासिल किये थे, मोटरें हासिल की थीं और फिर उन्हें बाजार में हजारों के मुनाफे पर बेचा था, उसके कदमों पर बिछे जाते थे और उसकी आवभगत देवताओं की तरह करते थे।

अब वह तूफान भी गुजर चुका है। मुसलमान शिवाजी पार्क से निकाल दिये गए हैं। कहीं-कहीं इक्का-दुक्का मुसलमानों का घर रह गया हो तो रह गया हो, मुझे इसकी खबर नहीं। हाँ, इतना जरूर जानता हूँ कि जिन्दगी अब फिर पुराने ढर्रे पर आ चली है। लोग-बाग फिर रात को घरों से सैर करने के लिए निकलने लगे हैं। औरतों और बच्चों के कहकहे भी सुनाई देने लगे हैं। समन्दर के किनारे दही-बड़ेवाले, फूलवाले और नारियल बेचने वाले घूम रहे हैं। ठेलों पर शमा रोशन है और गुजराती सेठों की कीमती गाड़ियाँ जनाटे के साथ गुजर जाती हैं और आदमी उन्हें तकता रह जाता है।

दौलतसिंह की जरूरत अब खत्म हो चुकी है। उसके घर अब शराब की बोतल नहीं पहुँचाई जाती। न सौ-पचास रुपये की आमदनी है। कोई अब उसके गले में फूलों का हार नहीं पहनाता, उसे हिन्दू धर्म का रक्षक नहीं बनाता। बड़े-बड़े सेठ जो फसाद के दिनों में खुद उसके गले में हार डाले फिरते थे अब उसकी तरफ आँख उठा कर नहीं देखते।

दौलतसिंह तूफान का उगाया हुआ पौधा है। [illegible] है। [illegible] उसकी [illegible] में पहुँच चुका है। उसके [illegible] एक-एक करके [illegible] चुके हैं। मगर एक [illegible] अभी बाकी है। [illegible] वाले [illegible], [illegible], [illegible], [illegible], [illegible], [illegible], [illegible], जिन्दगी के [illegible] हुए लोग और [illegible] जिन्होंने [illegible] का [illegible] लिया था और [illegible] जिन्दगी पर [illegible] रहे हैं। वे लोग सोचते हैं कि मुसलमान चले गये, लेकिन [illegible] नहीं हुई। [illegible] नहीं मिलता, [illegible] नहीं मिलता, [illegible] नहीं चलती। मुसलमान चले गए, लेकिन [illegible] नहीं [illegible]। हाँ, [illegible] के [illegible]

मोटरें उसी तरह हैं, उनके घरों में वही शान-शौकत है, उनके कारखाने उसी तरह चलते हैं।

मुसलमान चले गए, भगा दिये गए, मार डाले गये।

लेकिन दोहत्तड़ पहले की तरह, बदस्तूर, भूखा है।

दो-चार रोज तो उसने सब्र किया। फिर परेशान होकर उसने सेठ दलपत की मोटर रोक ली। कहा—'सेठ, वह तुम्हारे वायदे किधर गये?'

सेठ ने रुखाई से कहा—'कैसे वायदे?'

'वही कि मैं यह करूँगा, मैं वह करूँगा।'

'क्या नहीं किया मैंने?—और क्या माँगता है? यह ले पाँच रुपये।'

'पाँच रुपये नहीं चाहिए। वह तेरे आदमी को जो कर्नल मुशर्रफ का फ्लैट दिलवाया था, उसका कमीशन पाँच सौ बनता है। वह बोलता था दूँगा, अभी तक दिया नहीं।'

'तो मुझसे क्यों माँगता है? रास्ते में मोटर रोक के खड़ा है साला, पुलिस में चालान करा दूँगा।'

'पुलिस में चालान करा देगा!' दोहत्तड़सिंह गरजा—'तेरी बहिन दी......'

झुम्म-से मोटर उसके हाथों से निकल गई और वह सड़क पर गिर कर मरते-मरते बचा।

रात को उसने सेठ दलपत के आदमी को कत्ल कर दिया जिसने पगड़ी का कमीशन नहीं दिया था। अब उन्हीं मरहठा सेठों ने उसे गिरफ्तार करा दिया जिन्होंने बीसों मुसलमानों के कत्ल होने पर भी उसे पुलिस के हाथों से बचा लिया था, झूठी गवाहियाँ देकर। अब वह हिन्दू धर्म का रक्षक नहीं रहा था। अब वह शिवाजी पार्क के अमन का दुश्मन था।

उसके खिलाफ जो इलज़ाम लगाए गए वह ये थे—

१—वह पञ्जाबी था।

अब वह हिन्दू धर्म की इज़्ज़त का रक्षक था और जिन लोगों ने उसके ज़रिये फ्लैट हासिल किये थे, मोटरें हासिल की थीं और फिर उन्हें बाज़ार में हज़ारों के मुनाफे पर बेचा था, उसके कदमों पर बिछे जाते थे और उसकी आवभगत देवताओं की तरह करते थे।

अब वह तूफ़ान भी गुज़र चुका है। मुसल्मान शिवाजी पार्क से निकाल दिये गए हैं। कहीं-कहीं इक्का-दुक्का मुसलमानों का घर रह गया हो तो रह गया हो, मुझे इसकी खबर नहीं। हाँ, इतना जरूर जानता हूँ कि ज़िन्दगी अब फिर पुराने ढर्रे पर आ चली है। लोग-बाग फिर रात को घरों से सैर करने के लिए निकलने लगे हैं। औरतों और बच्चों के कहकहे भी सुनाई देने लगे हैं। समन्दर के किनारे दही-बड़ेवाले, फूलवाले और नारियल बेचने वाले घूम रहे हैं। ठेलों पर शमा रोशन है और गुजराती सेठों की कीमती गाड़ियाँ ज़न्नाटे के साथ गुज़र जाती हैं और आदमी उन्हें तकता रह जाता है।

दोहत्तड़सिंह की जरूरत अब खत्म हो चुकी है। उसके घर अब शराब की बोतल नहीं पहुँचाई जाती। न सौ-पचास रुपये की आमदनी है। कोई अब उसके गले में फूलों का हार नहीं पहनाता, उसे हिन्दू धर्म का रक्षक नहीं बनाता। बड़े-बड़े सेठ जो फसाद के दिनों में खुद उसके गले में हाथ डाले फिरते थे अब उसकी तरफ़ आँख उठा कर नहीं देखते।

दोहत्तड़सिंह तूफ़ान का उखड़ा हुआ पौदा है। डोल रहा है। जहर उसकी रग-रग में पहुँच चुका है। उसके हिमायती एक-एक करके विदा हो चुके हैं। मगर एक माकूल संख्या अभी बाकी है। कम वेतन वाले क्लर्क, धोबी, नाई, कुँजड़े, ड्राइवर, करखन्दार, बेकार, जिन्दगी के सताए हुए लोग और गुंडे जिन्होंने कभी मा का दूध पिया था और आज जिन्दगी का जहर पीते हैं। ये लोग सोचते हैं कि मुसलमान चले गये, लेकिन बेकारी खत्म नहीं हुई। कपड़ा नहीं मिलता, मकान नहीं मिलता, तनख्वाह नहीं बढ़ती। मुसल्मान चले गए, लेकिन चीजें सस्ती नहीं होतीं। हाँ, अमीरों के पास

मोटरें उसी तरह हैं, उनके घरों में वही शान-शौकत है, उनके कारखाने उसी तरह चलते हैं।

मुसलमान चले गए, भगा दिये गए, मार डाले गये।

लेकिन दोहत्तड़ पहले की तरह, बदस्तूर, भूखा है।

दो-चार रोज तो उसने सब्र किया। फिर परेशान होकर उसने सेठ दलपत की मोटर रोक ली। कहा—'सेठ, वह तुम्हारे वायदे किधर गये?'

सेठ ने रुखाई से कहा—'कैसे वायदे?'

'वही कि मैं यह करूँगा, मैं वह करूँगा।'

'क्या नहीं किया मैंने?—और क्या माँगता है? यह ले पाँच रुपये।'

'पाँच रुपये नहीं चाहिए। वह तेरे आदमी को जो कर्नल मुशर्रफ का फ्लैट दिलवाया था, उसका कमीशन पाँच सौ बनता है। वह बोलता था दूँगा, अभी तक दिया नहीं।'

'तो मुझसे क्यों माँगता है? रास्ते में मोटर रोक के खड़ा है साला, पुलिस में चालान करा दूँगा।'

'पुलिस में चालान करा देगा!' दोहत्तड़सिंह गरजा—'तेरी बहिन दी......'

झुम्म-से मोटर उसके हाथों से निकल गई और वह सड़क पर गिर कर मरते-मरते बचा।

रात को उसने सेठ दलपत के आदमी को कत्ल कर दिया जिसने पगड़ी का कमीशन नहीं दिया था। अब उन्हीं मरहठा सेठों ने उसे गिरफ्तार करा दिया जिन्होंने बीसों मुसलमानों के कत्ल होने पर भी उसे पुलिस के हाथों से बचा लिया था, झूठी गवाहियाँ देकर। अब वह हिन्दू धर्म का रक्षक नहीं रहा था। अब वह शिवाजी पार्क के अमन का दुश्मन था।

उसके खिलाफ जो इल्ज़ाम लगाए गए वह ये थे—

१—वह पञ्जाबी था।

२—वह पञ्जाबी गुंडा था।

३—वह सिख था।

४—वह सिख कातिल था।

५—उसने एक मुसलमान औरत के आदमी का कत्ल करके औरत को अपने घर में रख लिया था।

६—उसने दलपत सेठ मारवाड़ी की मोटर रोक ली थी।

७—मोटर रोक कर उसने कत्ल की धमकी दी थी।

८—उसने सेठ दलपत के साझीदार को कत्ल कर दिया था और फ्लैट में दूसरे लोगों को कत्ल करने जा रहा था कि उसको पुलि गिरफ्तार कर लिया।

९—वह शिवाजी पार्क में जहाँ सिर्फ़ शरीफ लोग बसते हैं, अम